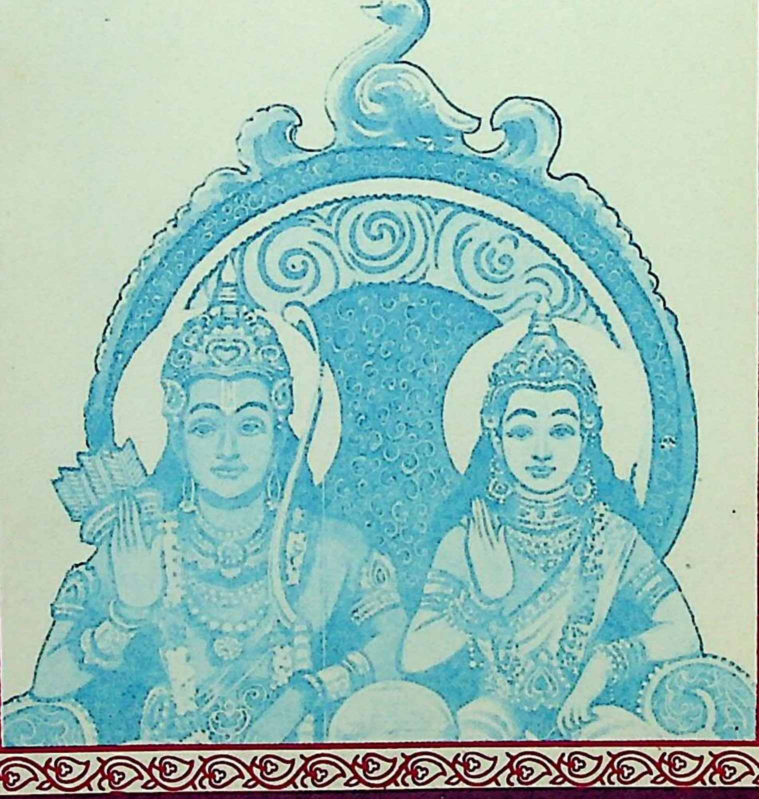
आत्मरामायण



श्रीः

आत्मरामायण भाषा

अर्थात्

रामायणका रहस्योद्घाटन.

★

श्री व्रजरत्न भट्टाचार्य संगृहीत

★

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

लिये तपोधन महर्षियोंने अपने अमूल्य समयका प्रचुर भाग व्यय करके भी सर्वसामान्य सिद्धान्त स्थिर करनेमें अपनी शक्तिकी अपर्य्याप्तता ही प्रदर्शन की है। ईश्वरीय कोई मतमतान्तर न होते हुए भी उसी विषयकी पर्य्यालोचना करते करते असंख्य मतमतान्तर और साम्प्रदायिक भेदोंकी सृष्टि हो गई तथापि निर्विवाद मत और सिद्धान्त कोई स्थिर न कर सका, तब हमारा सिद्धान्त कहांतक प्रबल है इस विषयमें कुछ कहनेका हमें अधिकार नहीं है।

उसके विषयमें विद्वत्समाज स्वयं निर्णय कर सकता है। हां, इतना हम अवश्य कहेंगे कि अपने मानसिक भाव प्रकट करनेके लिये सब किसीको स्वतन्त्र अधिकार है और उसी अपने नैसर्गिक अधिकारको हम भी काममें लाये हैं।

विज्ञ पाठकोंने श्रीकृष्णचरित संबंधी हमारी कल्पना "रसिक रहस्य" का खूब सम्मान किया। विद्वत्समाजने उसकी प्रशंसा की, एवं साम्प्रदायिक जगद्गुरुओंने उसकी उपयोगिताको शुद्धान्तःकरणसे स्वीकार किया जिससे हमें विश्वास होता है कि—हमारी इस नूतन कल्पनाको भी विद्वत्समाज अवश्य आश्रय प्रदान करेगा।

राम चरित एक मधुर मोदक है, उसे जिधरसेही चाखें अपूर्व मधुरिमा और स्वाद मिलता है। यद्यपि यह आत्मरामायण भाषा वेदान्त विषयक एवं आत्मवाद संबंधी रामचरित है, तथापि इसमें कर्मयोग, भक्तियोग, उपासना कांड और ज्ञानकांड सभी विषय का यथास्थान निरूपण किया गया है। केवल रामचरितके प्रेमी रामायणमात्रकी दृष्टिसे पढ़ने पर भी अपने मनोरंजनकी यथेष्ट सामग्री इसमें प्राप्त कर सकते हैं, अतएव हम स्पष्ट कहेंगे कि सभी विचार, सभी श्रेणी एवं सभी स्थितिके पाठक इस आत्मरामायण भाषाके पाठसे लाभ उठा सकते हैं।

दूधकी मधुरता और उसका स्वाद बढ़ानेके लिये अन्यत्रकी बनी हुई मिश्रीका उसमें संयोग करना होता है, विविध भांतिके व्यंजनोंके स्वादिष्ट बनानेके लिये उनमें लवण मिलाना ही पड़ता है। यद्यपि लवण अन्यत्र ही उत्पन्न होता है तब अपनी कृतिको समयानुसार तथा स्थलके अनुकूल मधुर अथवा सलोनी बनानेके लिये पूर्वाचार्य्योंकी छाया ही क्यों, वाणीतक को उद्धृतकर लेनेमें कौन आपत्ति कर सकता है। इसी विश्वासपर हमने श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत मानस रामायण अध्यात्मरामायण भगवद्गीता तथा एतद्विषयक अन्य कई ग्रंथोंसे बहुत कुछ मसाला लिया है, अत एव हम उन सबके कर्ताओं का हृदयसे आभार मानते हैं।

आत्मरामायण भाषाके मुद्रित करने तथा समूल्य वितरण करनेके पूर्णाधिकार हम बंबईके श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस तथा कल्याणके लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेसके स्वामी परमोदार वर श्रीयुक्त सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको सर्मपित करते हैं। और आशा करते हैं वे शीघ्र ही मुद्रित कर इसको प्रचलित करेंगे।

यदि किसीभी स्थितिके पाठकोंका इससे हितसाधन अथवा मनोरंजन हुआ तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

श्रीरामचरणानुरागी—
व्रजरत्न भट्टाचार्य,
मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

आत्मरामायण भाषाके पात्रोंका स्पष्टीकरण

१ दशों रथ	१ पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय.
२ रथाश्व.	२ मन.
३ राजा दशरथ.	३ जीवात्मा.
४ कौशल्या.	४ भक्ति.
५ कैकेई.	५ प्रवृत्ति.
६ सुमित्रा.	६ निवृत्ति.
७ श्रीरामचन्द्रजी.	७ ज्ञान.
८ भरतजी.	८ वैराग्य.
९ लक्ष्मण.	९ विवेक.
१० शत्रुघ्नजी.	१० विचार.
११ विश्वामित्र.	११ विश्वास.
१२ वसिष्ठजी.	१२ वेद.
१३ ताडका.	१३ शंका
१४ मारीच.	१४ कामना (काम)
१५ यज्ञ.	१५ विष्णु आराधन
१६ राजाजनक.	१६ विदेह
१७ सीता.	१७ शान्ति.
१८ शिवधनुष.	१८ अहंकार.
१९ गौतम.	१९ तप.
२० अहल्या.	२० क्षमा.
२१ जनकपुर.	२१ जगत्.
२२ परशुरामजी.	२२ प्रेम.
२३ परशुरामका धनुष.	२३ अभिमान.
२४ वन.	२४ आनन्द.
२५ कुशकेतु.	२५ कैवल्य.
२६ उर्मिला	२६ नम्रता.
२७ माण्डवी.	२७ विरति.
२८ श्रुतिकीर्ति.	२८ समता.

सपत्नीक चारों भ्राता

रामचंद्र. ज्ञान.	सीता. शान्ति.
लक्ष्मण विवेक.	उर्मिला. नम्रता.
भरत. वैराग्य.	माण्डवी. विरति.
शत्रुघ्न. विचार	श्रुतिकीर्ति. समता.

२९ सुमन्त.	२९ सुकर्म.
३० रथ.	३० अखंडता.
३१ वन.	३१ निर्भय
३२ तमसा.	३२ ब्रह्मविद्या.
३३ निषाद.	३३ जिज्ञासा.
३४ कठौता.	३४ आधार.
३५ नौका.	३५ धारणा.
३६ भरद्वाज.	३६ उपराम.
३७ त्रिवेनी (गंगा, यमुना, सरस्वती	३७ इडा, पिंगला सुषुम्ना).
३८ वाल्मीकिजी.	३८ दम.
३९ चित्रकूट.	३९ निर्लेप जन.
४० चरणपादुका.	४० कृपा.
४१ जयन्त.	४१ कर्म्म
४२ बाण.	४२ अक्रिय.
४३ नारदजी.	४३ निष्काम.
४४ अत्रि	४४ अकर्म.
४५ अनसूया.	४५ अनसूया.
४६ शरभंग.	४६ तेज.
४७ सुतीक्ष्ण.	४७ शम.
४८ अगस्त्य	४८ अद्वैत

संस्करण : जनवरी २००९, सम्वत् २०६५

मूल्य २५ रुपये मांत्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

भूमिका

प्रकृतिका नियम है कि—वह सदैव अपने स्वार्थकी ओर मनुष्यकी मानसिक चित्त-वृत्तिका आकर्षण किया करती है, यही कारण है कि, प्राकृतिक सौंदर्यको देखकर राजा और रंक सभीके मनमें समान सन्तोष और हर्ष होता है। प्राकृतिक सौन्दर्य्यका अवलोकन करनेसे सभीके चित्तमें नई कल्पनाएँ प्रादुर्भूत होने लगती हैं। संभवतः सांसारिक श्रीवृद्धि एवं अभिनव आविष्कारोंकी सृष्टिका मूल कारण यही है।

कैमोर पर्वतके नीचे गोविन्दगढ़ नामक एक सुन्दर ग्राम है। पर्वत और ग्रामके ठीक बीचोबीच एक अतलस्पर्शी एवं कई मील लंबा स्वच्छ सरोवर है। वैसे तो यह स्थान सदा ही सौन्दर्य्यसंपन्न रहता है, परन्तु चातुर्मासमें यहांकी शोभा निराली हो जाती है। इसके कई कारण हैं, एक तो श्रीमान् रीवां नरेश वर्षाकालमें अपने दलबल एवं सब विभागों के प्रधान-प्रधान तथा आवश्यक कर्मचारियों सहित यहांही विराजमान रहते हैं, दूसरे, पर्वत और पहाड़ी वन हरियालीकी अपूर्व छटा धारण कर लेते हैं, वैसे तो बोट किश्तियाँ, डोंगियां और नावें सदाही इस झील में दौड़ती रहती हैं परन्तु आजकल इनकी अठखेलियोंकी और भी अधिकता हो जाती है।

भगवान् रमागोविन्दजीके मन्दिर में विविध भांतिके उत्सव होते हैं, प्रायः उन सभी उत्सवोंमें भगवान् जलविहार करनेके लिये सरोवरमें पधारते हैं। सुसज्जित बोटके ऊपर भगवान् विराजते हैं उनके सम्मुख श्रीकृष्णलीला कंपनीके चतुर कार्य्यकर्त्ताओंका नृत्य गान होता है। इन उत्सवोंमें श्रीमन्नारायणकी झांकी करनेके लिये सहस्रों नर नारी दूर दूरसे आते हैं। ऐसे अवसरोंपर इस स्थानकी शोभा और चहल-पहल विशेष दर्शनीय होती है.

जिस मार्गसे पर्वतकी जल-राशि सरोवरमें निपतित होती है उसको और उसके आसपासके स्थानको खन्दो कहते हैं। खन्दो स्थान बड़ाही मनोहारी है। यहां दो-तीन मन्दिर, राज्यकी विशाल-विशाल गोशालाएँ एवं अन्य कई स्थान हैं। जलप्रपातसे एक गंभीर कुंड बन गया है, इसीमें गिरकर जल सरोवरमें भरता है इस स्थानमें अकेला व्यक्ति चाहे जितनी देर बैठा रहे चित्त नहीं ऊबता। खन्दोंमें खड़े होकर देखनेसे नेत्रोंके सन्मुख एक अनोखाही दृश्य दीखता है, एक ओर पर्वतके उन्नत शिखर दूसरी ओर सरोवरके मध्यमें गगनस्पर्शी राजप्रासाद और पीठ पीछे जलप्रपात कैसा सौन्दर्य है, दर्शकोंसे पूंछ कर देखिये।

सरोवरके मध्यमें शेषशायी भगवान्का एक मन्दिर है, उसे लोग शीतल द्वीप और श्वेतद्वीप कहते हैं। वहां उपस्थित होनेपर महर्षियोंके रहन-सहनका स्मरण होने पर मन हठात् अध्यात्मविचारमें प्रवृत्त होने लगता है।

हमें भी इस वर्ष इन सब रमणीय स्थानोंकी कमनीयता अवलोकन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जगदीशकी प्रेरणासे उस समय हमारे मनमें रामचरितसंबंधी जो कुछ भाव उदय हुए उनके परिणामका फल यह आत्मरामायण भाषा विचारशील पाठकोंके करकमलोंमें अर्पित है।

नरकृत होनेके कारण यह तो कहना असंगत ही है कि इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि ही नहीं है यह कर्तव्यभी कितना दुरूह एवं उत्तरदायित्वपूर्ण कि जिसका विवेचन करने के

लिये तपोधन महर्षियोंने अपने अमूल्य समयका प्रचुर भाग व्यय करके भी सर्वसामान्य सिद्धान्त स्थिर करनेमें अपनी शक्तिकी अपर्य्याप्तता ही प्रदर्शन की है। ईश्वरीय कोई मतमतान्तर न होते हुए भी उसी विषयकी पर्य्यालोचना करते करते असंख्य मतमतान्तर और साम्प्रदायिक भेदोंकी सृष्टि हो गई तथापि निर्विवाद मत और सिद्धान्त कोई स्थिर न कर सका, तब हमारा सिद्धान्त कहांतक प्रबल है इस विषयमें कुछ कहनेका हमें अधिकार नहीं है।

उसके विषयमें विद्वत्समाज स्वयं निर्णय कर सकता है। हां, इतना हम अवश्य कहेंगे कि अपने मानसिक भाव प्रकट करनेके लिये सब किसीको स्वतन्त्र अधिकार है और उसी अपने नैसर्गिक अधिकारको हम भी काममें लाये हैं।

विज्ञ पाठकोंने श्रीकृष्णचरित संबंधी हमारी कल्पना "रसिक रहस्य" का खूब सम्मान किया। विद्वत्समाजने उसकी प्रशंसा की, एवं साम्प्रदायिक जगद्गुरुओंने उसकी उपयोगिताको शुद्धान्तःकरणसे स्वीकार किया जिससे हमें विश्वास होता है कि—हमारी इस नूतन कल्पनाको भी विद्वत्समाज अवश्य आश्रय प्रदान करेगा।

राम चरित एक मधुर मोदक है, उसे जिधरसेही चाखें अपूर्व मधुरिमा और स्वाद मिलता है। यद्यपि यह आत्मरामायण भाषा वेदान्त विषयक एवं आत्मवाद संबंधी रामचरित है, तथापि इसमें कर्मयोग, भक्तियोग, उपासना कांड और ज्ञानकांड सभी विषयका यथास्थान निरूपण किया गया है। केवल रामचरितके प्रेमी रामायणमात्रकी दृष्टिसे पढ़ने पर भी अपने मनोरंजनकी यथेष्ट सामग्री इसमें प्राप्त कर सकते हैं, अतएव हम स्पष्ट कहेंगे कि सभी विचार, सभी श्रेणी एवं सभी स्थितिके पाठक इस आत्मरामायण भाषाके पाठसे लाभ उठा सकते हैं।

दूधको मधुरता और उसका स्वाद बढ़ानेके लिये अन्यत्रकी बनी हुई मिश्रीका उसमें संयोग करना होता है, विविध भांतिके व्यंजनोंके स्वादिष्ट बनानेके लिये उनमें लवण मिलाना ही पड़ता है। यद्यपि लवण अन्यत्र ही उत्पन्न होता है तब अपनी कृतिको समयानुसार तथा स्थलके अनुकूल मधुर अथवा सलोनी बनानेके लिये पूर्वाचार्य्योंकी छाया ही क्यों, वाणीतक को उद्धृतकर लेनेमें कौन आपत्ति कर सकता है। इसी विश्वासपर हमने श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत मानस रामायण अध्यात्मरामायण भगवद्गीता तथा एतद्विषयक अन्य कई ग्रंथोंसे बहुत कुछ मसाला लिया है, अत एव हम उन सबके कर्ताओं का हृदयसे आभार मानते हैं।

आत्मरामायण भाषाके मुद्रित करने तथा समूल्य वितरण करनेके पूर्णाधिकार हम बंबईके श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस तथा कल्याणके लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेसके स्वामी परमोदार वर श्रीयुक्त सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको समर्पित करते हैं। और आशा करते हैं वे शीघ्र ही मुद्रित कर इसको प्रचलित करेंगे।

यदि किसीभी स्थितिके पाठकोंका इससे हितसाधन अथवा मनोरंजन हुआ तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

श्रीरामचरणानुरागी—
व्रजरत्न भट्टाचार्य,
मुरादाबाद.

आत्मरामायण भाषाके पात्रोंका स्पष्टीकरण

१ दशों रथ	१ पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय.
२ रथाश्व.	२ मन.
३ राजा दशरथ.	३ जीवात्मा.
४ कौशल्या.	४ भक्ति.
५ कैकेई.	५ प्रवृत्ति.
६ सुमित्रा.	६ निवृत्ति.
७ श्रीरामचन्द्रजी.	७ ज्ञान.
८ भरतजी.	८ वैराग्य.
९ लक्ष्मण.	९ विवेक.
१० शत्रुघ्नजी.	१० विचार.
११ विश्वामित्र.	११ विश्वास.
१२ वसिष्ठजी.	१२ वेद.
१३ ताडका.	१३ शंका
१४ मारीच.	१४ कामना (काम)
१५ यज्ञ.	१५ विष्णु आराधन
१६ राजाजनक.	१६ विदेह
१७ सीता.	१७ शान्ति.
१८ शिवधनुष.	१८ अहंकार.
१९ गौतम.	१९ तप.
२० अहल्या.	२० क्षमा.
२१ जनकपुर.	२१ जगत्.
२२ परशुरामजी.	२२ प्रेम.
२३ परशुरामका धनुष.	२३ अभिमान.
२४ वन.	२४ आनन्द.
२५ कुशकेतु.	२५ कैवल्य.
२६ उर्मिला	२६ नम्रता.
२७ माण्डवी.	२७ विरति.
२८ श्रुतिकीर्ति.	२८ समता.

सपत्नीक चारों भ्राता

रामचंद्र. / ज्ञान.	सीता. / शान्ति.
लक्ष्मण / विवेक.	उर्मिला. / नम्रता.
भरत. / वैराग्य.	माण्डवी. / विरति.
शत्रुघ्न. / विचार	श्रुतिकीर्त्ति. / समता.

२९ सुमन्त.	२९ सुकर्म.
३० रथ.	३० अखंडता.
३१ वन.	३१ निर्भय
३२ तमसा.	३२ ब्रह्मविद्या.
३३ निषाद.	३३ जिज्ञासा.
३४ कठौता.	३४ आधार.
३५ नौका.	३५ धारणा.
३६ भरद्वाज.	३६ उपराम.
३७ त्रिवेनी (गंगा, यमुना, सरस्वती	३७ इडा, पिंगला सुषुम्ना).
३८ वाल्मीकिजी.	३८ दम.
३९ चित्रकूट.	३९ निर्लेप जन.
४० चरणपादुका.	४० कृपा.
४१ जयन्त.	४१ कर्म्म
४२ बाण.	४२ अक्रिय.
४३ नारदजी.	४३ निष्काम.
४४ अत्रि	४४ अकर्म.
४५ अनसूया.	४५ अनसूया.
४६ शरभंग.	४६ तेज.
४७ सुतीक्ष्ण.	४७ शम.
४८ अगस्त्य	४८ अद्वैत

४९ पंचवट.	४९ शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध.
५० पंचवटी.	५० जितेन्द्रिय पुरुषका चित्त.
५१ शूर्पणखा.	५१ तृष्णा.
५२ खर.	५२ मोह.
५३ दूषण.	५३ उन्माद:
५४ रावण.	५४ अज्ञान.
५५ कपटमृग.	५५ नामरूप.
५६ जटायु.	५६ धर्म.
५७ शबरी.	५७ प्रीति.
५८ बेर.	५८ भाव,
५९ पम्पासर.	५९ निर्मल. हृदय.
६० किष्किन्धा.	६० उन्नति.
६१ वाली.	६१ लोभ.
६२ ऋष्यमूक.	६२ एकान्त.
६३ सुग्रीव.	६३ सन्तोष.
६४ हनुमानजी.	६४ सत्संग.
६५ अंगद.	६५ अक्रोध.
६६ स्फटिकशिला.	६६ विवेकियोंका शुद्धान्त:करण.
६७ वानर.	६७ यमनियम आदि.
६८ समुद्र.	६८ अगम.
६९ सम्पाती.	६९ सत्त्वगुण.
७० लंका.	७० भ्रान्ति.
७१ परिखा.	७१ आशा
७२ जल.	७२ मनोरथ.
७३ राक्षस.	७३ वैर विरोध आदि.
७४ विभीषण.	७४ विहितकर्म
७५ अशोक.	७५ अशोकवाटिका
७६ मुद्रिका.	७६ श्रीमुखवाक्य
७७ वृक्षवेलें.	७७ अनृत.
७८ मेघनाद.	७८ राग.
७९ चूडामणि.	७९ श्रद्धा.
८० रामेश्वर.	८० गुरु.
८१ सेतुबन्ध.	८१ रामलीला.
८२ मंदोदरी.	८२ सुमति.
८३ रामचंद्र-जीका पत्र.	८३ उपदेश.
८४ अंगदका पग	८४ स्थिरता.
८५ शक्ति.	८५ आशक्ति.
८६ सुषेण.	८६ धैर्य्य.
८७ द्रोणाचल.	८७ सत्शास्त्र.
८८ संजीवनी.	८८ स्मृति.
८९ कालनेमि.	८९ कपट.
९० कुम्भकर्ण.	९० क्रोध.
९१ सुलोचना.	९१ रति.
९२ अहिरावण.	९२ द्वेष.
९३ मकरध्वज.	९३ निर्लोभ.
९४ अवध	९४ पंचकोश. (अयोध्या) पुरी.
९५ राजसिंहासन.	९५ विज्ञान.
९६ छत्र	९६ अटल आनंद
९७ व्यजन.	९७ प्रहर्षण.
९८ चमर.	९८ संरक्षण
९९ मोरछल.	९९ संगोपन.
१०० रामायण.	१०० आत्मविचार.
१०१ अमूल्यरत्न.	१०१ अभेदभक्ति.

समाप्त ।

ॐ

आत्मरामायण भाषा

[रामायण-रहस्योद्घाटन]

★

बालकाण्ड

जगदीश्वरकी महिमा अपार है, बड़े-बड़े विज्ञानी महर्षि और महात्मा भी उसका पार नहीं पा सकते। सभी उसे अनादि, अनन्त, अजन्मा, अजर और अमर मानते हैं, उसका भेद वेद भी नहीं जानते, यह समझकर भी कवि और काल्पनिक जन अपने-अपने भाव उसके विषयमें प्रगट किया करते हैं।

चौ०-सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥ अकथनीय यद्यपि गुण अहहीं। भक्ति विलास हेतु कछु कहहीं॥

पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, येही दशों रथ हैं, और मनरूप एक प्रबल अश्व इनमें जुत रहा है। इसी विचित्र रथके ऊपर देहाधिष्ठानके आवरणमें जो जीवात्मा मनके प्रबल वेगको रोककर अपने स्वाधीन कर इंद्रियरूप रथको उनके विषयादि अन्ध कूपोंमें निपतित न होने देकर नष्ट होनेसे बचा लेता है अथवा मनको यथेष्ट गतिका अवरोध कर कर्णेन्द्रिय द्वारा भगवद्गुणानुवादका श्रवण, त्वगिन्द्रियसे शीतोष्णादि दुःख सहकर भी चरणोंसे तीर्थ अथवा दिव्य धाम यात्रा, हाथोंसे सन्त सेवा, रसनासे भगवद्गुण गान और

नासिकासे भगवान्‌की वनमालाकी गन्धका घ्राण करता है अर्थात् जिसने मनोनिग्रह और इंद्रियोंका दमन कर इन सबको अपने स्वाधीन बना लिया है, उसी जीवात्माका नाम दशरथ है।

जीवात्मा दशरथ महाराजकी तीन पत्नियाँ हैं-भक्ति-रूपा ज्येष्ठ रानी कौशल्या, निवृत्तिरूपास्त्री सुमित्रा और प्रवृत्तिरूपा पत्नी कैकेयी नामसे अभिहित हुई हैं।

प्रवृत्ति निवृत्ति रूपा कैकेयी और सुमित्राके साथ रहकर जब जीवात्मा दशरथका भक्तिरूपा कौशल्यासे संसर्ग हुआ तभी आकाशवाणी हुई।

चौपाई—माँगु मांगु वर भइ नभ बानी। परम गँभीर कृपामृत सानी॥ सकुच विहाय माँगु नृप मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं॥

गगन गिरा सुन राजा दशरथने कहा—प्रभो! यदि आप मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं तो ऐसा अनुग्रह करिये जिससे नित्यही आपके दर्शन हुआ करें।

आकाशवाणीने कहा—राजन्! योगी और विरागी भी जबतक समाधिस्थ रहते हैं तभी तक उन्हें मेरे दर्शन प्राप्त होते हैं पश्चात् नहीं। अतः निरंतर मेरे दर्शनोंका होना अत्यंत कठिन है। हाँ, ज्ञानी पुरुष निरन्तरही मेरा दर्शन करते हैं, इसका कारण यह है कि वे चर अचर और दृश्यादृश्य सबको ब्रह्म स्वरूपही देखते और जानते हैं।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥"

अतः जब तुम भी ज्ञान प्राप्त कर लोगे तब तुम्हे सदैव मेरा दर्शन हुआ करेगा। यह सुनकर राजा दशरथने विनय की, कि नाथ ! ज्ञानी लोग तो—

चौ०—बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै बिधि नाना ॥ आनन रहित सकल रस भोगी। बिन बानी वक्ता बड़ योगी ॥ तनबिनु परस नयन बिनु देखा। गहै घ्राण बिनु वास अशेखा ॥

इस प्रकार आपका निर्गुण और निराकार स्वरूपसे भजन करते हैं। परन्तु मेरी यह इच्छा है कि मैं आपके सगुण स्वरूपका दर्शन करूं।

चौ०—जो स्वरूप बस शिव मन माहीं। जेहि कारण मुनि यतन कराहीं ॥ जो भुशुंडि मन मानसहंसा। सगुण अगुण जेहि वेद प्रशंसा ॥ देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारत मोचन ॥

आकाशवाणी हुई "एवमस्तु (जगदीशकी अनुग्रह वाणी सुन राजा दशरथको अपार हर्ष हुआ।) जीवात्मा दशरथका भक्तिरूपा कौसल्यासे जब घनिष्ठ संबंध हुआ तब ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीका प्रादुर्भाव हुआ। निवृत्तिरूपा सुमित्रासे विवेक स्वरूप श्रीलक्ष्मणजी एवं विचार स्वरूप शत्रुघ्नजीने जन्म लिया; और प्रवृत्तिस्वरूपा कैकेयीसे वैराग्यरूप भरतजीने जन्म ग्रहण किया।

(जब पराभक्तिसे संयोग होता है तभी शुद्ध ज्ञानकी उत्पत्ति होती है जब ज्ञानीको सांसारिक माया होनेसे निवृत्ति होती है तभी उसे विवेक होता है; एवं विवेक और विचारका परस्पर बड़ा घनिष्ठ संबंध है, और ज्ञानी जन यदि जीव-न्मुक्तकी भांति सांसारिक विषयोंमें प्रवृत्त भी हो जाता है तो भी उनमें लिप्त नहीं होता किन्तु उनसे उसे वैराग्य ही होता है, यही इस रामायणका रहस्य है) इस प्रकार ज्ञान(राम) विवेक (लक्ष्मण), विचार (शत्रुघ्न) और वैराग्य (भरत) इस प्रकार चारों पुत्रोंको पाकर, जीवात्मा दशरथको अपार हर्ष हुआ, एवं पंचकोश रूप अयोध्या पुरीके निवासी राज-कुमारोंके दर्शन से अति हर्षित हुए। अब तो विश्वास रूप विश्वामित्रजी पधारे (अर्थात्-ज्ञान, वैराग्य, विवेक और विचारके द्वारा जीवात्माके अन्तःकरणमें यह विश्वास हो गया कि अब हमारा कल्याण अवश्य होगा) राजा उन्हें सादर राजमहलमें ले आये । इस समय राजाके हर्षका पारावार न था, राजाने हर्षसे गद्गद हो निवेदन किया कि-

श्लोकः-अद्य क्रियाः का दुघाः क्रतूनां सत्याशिषः संप्रति भूमिदेवाः ॥ आसंसृतेरस्मि जगत्सुजातस्त्वय्यागते यद्बहुमानपात्रम् ॥

नाथ! आजआपने पधार कर मुझे मान और प्रतिष्ठाका पात्र बनाया, इससे मुझेबोधहोता है कि मेरे यज्ञानुष्ठान सफल

हो गये, आज ब्राह्मणोंके आशीर्वाद सत्य हुए हैं, और यावज्जीवन मेरे मानकी वृद्धि हुई है।

चौपाई-जो न अकारण करहिं कृपा तुमसे तपधारी।
तो पावहिं सत्संग कहां हमसे तनधारी॥

आपने अपार अनुग्रह और उपकार किया है, महर्षे! मेरा तन, मन, धन, जन, सब आपके अर्पण है, जो आज्ञा हो उसका पालन किया जाय बताइये आप किसलिये पधारे हैं?

राजन्! जिस समय हम यज्ञ स्वरूप विष्णुका आराधन करने लगते हैं तभी कामरूप मारीच आदि राक्षस हमारे उस सदनुष्ठानमें बाधा डालते हैं। इसीसे हम उनका विनाश करानेके लिये ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी एवं विवेकरूप श्रीलक्ष्मण-जीको लेने आये हैं। इनके बिना उन दुष्टोंका नाश करनेकी शक्ति और किसीमें नहीं है।

महर्षिका यह उत्तर सुन राजाको अत्यन्त शोक हुआ और वे कहने लगे—

चौपाई-कहँ निशिचर अति घोर कठोरा।
कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा॥

ये सुकुमार बालक अति लघु हैं, इन्हें अस्त्र-शस्त्र चलाना भी नहीं आता है, ये उन प्रबल दैत्योंसे युद्ध कैसे कर सकेंगे, अतः मैं इन्हें आपके साथ भेज नहीं सकता। हाँ, मैं स्वयं चलनेको उद्यत हूँ परंतु वृद्ध होजानेके कारण अज्ञान रूप रावणसे युद्ध करनेके लिये मैं भी अपनी शक्तिको पर्य्याप्त नहीं देखता हूँ।

जब जीवात्मा दशरथको यह व्यामोह उत्पन्न हो गया तब वेदरूप वसिष्ठजीका शुभागमन हुआ और वे कहने लगे-भूपते ! क्षत्रियोंको अपने वचनपर दृढ रहना चाहिये। तुम क्यों अपने वाक्योंका उल्लंघन करते हो ? नरनाथ ! तुम जिन्हें बालक समझते हो, वे बालक नहीं, किन्तु उन्हींकी प्रबल सत्तासे जगत् व्याप्त हो रहा है और उन्होंने अवतार ही दैत्योंका वध करनेके लिये लिया है।

इस उपदेशसे राजाको प्रबोध हुआ, उन्होंने चारों राज-कुमारोंको मुनिके चरणोंमें प्रणाम करा कर कहा-मुनीश्वर ! आपहीकी अनुकंपासे इस वृद्धावस्थामें चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई है, मैं इन्हें आपकी सेवामें नियुक्त करता हूँ आप इन्हें आशीर्वाद दीजिये और राम लक्ष्मणको साथ ले जाइये।

जब विश्वास और ज्ञानका संयोग होता है तब शंका नहीं रहती, सुतराम् जब विश्वामित्रजी रामचंद्रजीको अपने साथ लेकर चले, तभी शंकारूपी ताड़का राक्षसीका श्रीरामचंद्रजीने विनाश किया। अनंतर आश्रममें पहुँचकर विश्वामित्रजी भगव-दाराधनरूप यज्ञानुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हुए और राम लक्ष्मण उनके यज्ञकी रक्षा करने लगे। मैं काम करता हूँ, मुझे इसका अमुक फल प्राप्त होगा, इस प्रकारकी कामना ही सदनुष्ठानमें विघ्न बाधा उपस्थित कर देती है। अतः कामना अथवा कामरूप मारीच अनुष्ठानकर्त्ता विश्वामित्रजीके मनहीमें उपस्थित था। इसीसे श्रीरामचंद्रजी उनसे कहने लगे-

श्लोक-कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

मुनिराज ! आपको केवल कर्म करनेहीका अधिकार है, उसके फल भोगका नहीं, तुम कर्म फलके स्वयं हेतु न बनो, और कर्म करना छोड़ भी न बैठो, सारांश यह है कि निष्काम कर्म करना चाहिये सकाम नहीं, क्योंकि जो कर्म निष्काम भावसे किये जाते हैं उनके करनेमें विघ्न उपस्थित नहीं होते, यदि आरम्भ होनेके पश्चात् निष्काम कर्म किसी कारण छूट जायँ तो उनका प्रायश्चित्त भी नहीं लगता कारण कि कामना ही विघ्नस्वरूप होती है । अतः आप कामरूप मारीचको हृदय से निकाल कर निष्काम भावसे यज्ञ-नारायणका आराधन करें । यदि सूक्ष्म दृष्टिसे वास्तवमें विचार कर देखा जाय तो निष्काम होना भी सकामही है, क्योंकि विना कामना (इच्छा) के तो कोई कार्य्य बन नहीं सकता और मैं निष्काम कर्म करता हूँ इस प्रकार निष्काम बननेके लिये भी कामना करनी ही पड़ती है । सिद्धान्त यह है कि कामनाका विजय कर लेना प्रायः असंभवहीसा है, परन्तु उसके जीतनेके लिये एक उपाय अवश्य है-

श्लोक-नाहं कामो न मे काम इति कामो विजीयते॥

मैं स्वयं न तो कामना स्वरूप हूँ और न मुझमें कामना है, इस प्रकारके दृढ निश्चयसे कामनाका विजय हो जाता है । इससे आप भी अपने वास्तविक स्वरूपका अवलोकन करें ।

आपका स्वरूप कामना नहीं है और न कामना आपमें रहती है। इसका कारण यह है, कामना या वासना मनमें होती है और आप मनके द्रष्टा हैं द्रष्टा और दृश्य दोनों भिन्न-भिन्न होते हैं। जब इस प्रकार आप अपने स्वरूपको जानकर उसमें स्थित होंगे तब काममारीचकी विजय हो जायगी।

इस उपदेशको सुन जब विश्वामित्रजीने निष्काम भावको धारण किया और वे निष्काम स्वरूपमें स्थित हुए तभी विष्णु आराधन स्वरूप उनका यज्ञ पूर्ण हो गया, और आकाशसे देवताओंने पुष्प वर्षण किया। और श्रीरामचन्द्रजी महाराजका जयकारक निर्घोष सर्वत्र व्याप्त हो गया।

कुछ काल व्यतीत होनेपर विश्वामित्रजीने कहा—स्वामिन्! विदेहरूप राजा जनकने शान्तिरूपिणी अपनी पुत्री सीताका स्वयंवर रचा है उस स्वयंवरमें देशदेशान्तरके अनेक शूर-वीर भूपाल एकत्रित हुए हैं राजा जनकने यह प्रतिज्ञा की है कि अहंकाररूप धनुषको जो वीर नष्ट कर सकेगा शान्ति रूपी सीताका विवाह उसीसे किया जायगा। अतः हे नाथ! उस स्वयंवरके यज्ञमें आपभी पधारें और जनकपुर वासियोंको दर्शन देकर कृतार्थ करें।

बहुत अच्छा, कहकर रामचन्द्रजी अनुज लक्ष्मणको साथ ले विश्वामित्रजीके साथ जनकपुरको चल पड़े। मार्गमें तपः-स्वरूपा गौतम ऋषिकी क्षमारूपिणी अहल्या नारीका उद्धार किया। पिताको और कारणको जनक कहते हैं, सबका जनक

या कारण जगदीश है उस जगदीशका पुर यह जगत्‌ही जनक पुर कहलाता है । जब श्रीरामचंद्रजी जनकपुरमें पहुँचे तब संसाररूप जनकपुरके रहनेवाले अखिल नर-नारी ज्ञानरूप श्रीरामचंद्रजीको पाकर अतीव आह्लादित हुए । वे लोग ईश्वरसे प्रार्थना करने लगे-हे जगदीश ! शांतिके विना ज्ञानकी शोभा नहीं होती अतएव यदि शांतिरूपिणी सीता इन्हीं ज्ञानरूप श्रीरामचंद्रजीको मिले तो अच्छा हो ।

निदान राम लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके साथ धनुष यज्ञशालामें पधारे । उस यामिनीरूप यज्ञमें और भी बहुतसे शूर वीर राजा लोग नक्षत्र मंडलकी भाँति विराजमान थे और श्रीरामचंद्रजी महाराज पूर्ण कलाधरके समान सबके मध्यमें शोभायमान होने लगे ।

सब राजाओंको अपने-अपने बलका बड़ा घमंड था, वे जानते थे, कि मैं ही धनुष भंग करूंगा, परंतु सभी अपने बल पराक्रमको हार बैठे और अहंकाररूप धनुष किसीसे भी भग्न नहीं हुआ, क्योंकि अभिमानने तो सभीको दबा रक्खा था । जब विदेह (जनक) ने देखा अहंकाररूप धनुषको कोई भी तोड़ नहीं सका तब वे सभामें खड़े होकर कहने लगे-

चौ०देश-देश के भूपति नाना । आये सुनि जो हम प्रण ठाना ॥ देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रण धीरा ॥

दोहा–कुवँरिमनोहरिविजयबडि, कीरतिअतिकमनीय ।
पावनहार विरंचिजनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥

चौ०–कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न शंकर चाप चढ़ावा ॥ अब जनि कोउ माषै भटमानी । वीर विहीन मही मैं जानी ॥

अब हमको विश्वास हो गया कि–भूमंडलके ऊपर शूर वीर कोई नहीं है, अर्थात् सभीको अहंकारने दबा रक्खा है।

ये अवहेलना पूर्ण वाक्य लक्ष्मणजीको असह्य हुए, उन्होंने सभामें उठकर कहा, हे जनक ! मैं विवेक हूँ सत्यासत्यका विवेचन करना ही मेरा स्वरूप है यह अल्प अहंकार मेरे सन्मुख नहीं ठहर सकता, तो फिर जहाँ ज्ञानस्वरूप श्रीरामचंद्रजी स्वयं उपस्थित हैं भला वहां अहंकाररूप धनुष अखंडित कैसे रह सकता है। अतः आप ऐसा कदापि न कहें कि भूतलके ऊपर कोई भी ऐसा वीर नहीं रहा जो अहकार-रूप धनुषको तोड़ सके ।

निदान ज्ञानस्वरूप श्रीरामचंद्रजी स्वयं उठकर खड़े हुऐ। ज्ञान (रामचंद्रजीका प्रभाव विशेषतासे प्रगट होते ही अहंकार-रूप धनुष ऐसा छिन्न-भिन्न हुआ कि जिसके भंग होनेकी खबरतक किसीको न हुई । और शांतिरूपिणी सीताने जय-माला ज्ञानरूप रामचंद्रजीके गलेमें डाल दी । जय २ कारके निनादसे दशों दिशाऐं गूँज उठीं और देवता पुष्प बरसाने लगे । इस समय धर्मात्मा राजा तो रामचंद्रजीके दर्शनसे

कृतार्थ हो गये और दुष्टात्मा पापियोंने अपना मुँह छिपा लिया। दुष्टोंका नाश अहंकारहीसे होता है। अतः प्रेमरूप परशुरामजी क्रोधित होकर उपस्थित हुए क्योंकि उन्हें यह भ्रम हुआ कि दुष्टोंके व्याघातक अहंकाररूप धनुषको किसने तोड़ डाला, कौन ऐसा बली उत्पन्न हुआ है।

क्रुद्ध परशुरामके पधारते ही अन्य राजाओं समेत विदेह कम्पायमान हो ये क्योंकि प्रेममें कोपका आवेश देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

तब लक्ष्मणजी कहने लगे तपोधन! आपका स्वरूप तो प्रेममय है आपको क्रोध करना शोभा नहीं देता; अतः शान्त हो जाइये। कभी-कभी क्रोधका आवेश प्रेमको भी दबा लेता है, इसीसे प्रेमरूपपरशुरामजीको लक्ष्मणजीके बोलनेपर और भी क्रोध आ गया। अब तो ज्ञानरूप रामचन्द्रजी कहने लगे-प्रभो! लक्ष्मण बालकको आपका प्रभाव विदित नहीं है परन्तु मैं ब्राह्मणोंके महत्त्वको जानता हूँ, अतएव उनसे डरता ही रहता हूं और उनसे जो डरते हैं उनका कल्याण होता है। इसी कारण भृगुजीके चरणचिह्नको मैंने सदाके लिये अपने हृदयस्थलमें धारण कर लिया है।

रामचन्द्रजीके उपदेशमय वाक्य सुनकर प्रेमरूप परशुराम-जीके पास जो अभिमानरूप लघु धनुष था वह भी नष्ट हो गया। तब रामचन्द्रजीको पहचानकर परशुरामजी अपने प्रेमरूपको प्राप्त हो आनन्दरूप वनमें भ्रमण करने चले गये।

अब तो विदेह, वैदेही और जनकपुरवासी सभीके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने हर्षसे गद्गद हो विवाहका मुहूर्त नियत कर महाराज दशरथको पत्र लिखा और उसमें श्रीरामचन्द्रजीके धनुष तोड़ने और सीताजीके उन्हें जयमाला पहनानेका वृत्तान्त लिखकर बरात लानेको लिखा। इस हर्ष समाचारको सुन राजा दशरथ, उनका रनिवास और अयोध्यापुरवासी जन-समाज सभी विशेष रूपसे हर्षित हुए। एवं वेदरूप वसिष्ठजीकी आज्ञासे राजा दशरथ बरात लेकर जनकपुरको चल पड़े। वहां पहुँचकर जनकपुरकी शोभा देख अयोध्यावासियोंको अति आनन्द प्राप्त हुआ।

रामचन्द्रजीने जब पिताका आगमन सुना तब अत्यन्त हर्षित होकर अनुज (लक्ष्मण) समेत उनसे मिलने आये।

राजा विदेहने इस सुवर्ण योगको देख अपने लघु भ्राता कैवल्यरूप कुशकेतुकी नम्रतारूपा ऊर्मिला, विरतिरूपा मांडवी, और समतारूपा श्रुतिकीर्ति, इन तीनों पुत्रियोंका विवाह भी क्रमसे विवेकरूप लक्ष्मण वैराग्यरूप भरतजी और विचाररूप शत्रुहनजीसे कर देनेकी इच्छा प्रकट की। वेदरूप वसिष्ठजीकी आज्ञासे राजा दशरथके स्वीकार कर लेनेपर सुन्दर चार वेदियाँ रची गईं और उनके ऊपर चारों अवधेशकुमार बैठे, यथोचित विधिसे विवाह संस्कार संपन्न होनेपर अभेद भक्तिरूप अनमोल रत्न खूब लुटाये गये।

जब राजा दशरथ विदा हो अवधपुरीमें आये तब अपने चारों कुमारों और उनकी पत्नीयोंको देख देखकर अति प्रफुल्लित होते थे ।

इस समय अवधपुरवासियोंको भी अपार आनन्द प्राप्त हो रहा था और सभी हर्षमें मग्न हो रहे थे ।

बालकाण्ड समाप्त ।

अयोध्याकाण्ड

तदनन्तर जीवात्मा दशरथको मोह हुआ और वे प्रवृत्ति-रूपा कैकेयीमें आसक्त होने लगे । (जबतक प्रवृत्तिमें आसक्ति रहती है तबतक ज्ञानकी यथार्थ शोभा नहीं होती) इस हेतुको सोचकर प्रवृत्ति कैकेयीने जीवात्मा दशरथसे कहा प्रभो ! आप ज्ञानरूप श्रीरामचन्द्रजीको वन भेजकर वैराग्य-रूप भरतको राज्य दीजिये, इसका तात्पर्य यह है कि जबतक आप वैराग्य आदि साधनोंको यथोक्त रीतीसे न कर लेंगे तबतक ज्ञानका अधिकार आपको नहीं मिल सकता ।

राजा तो यह सुनकर अति दुःखित हुए, परंतु ज्ञानरूप रामचन्द्रजी वन जानेके लिए उद्यत होगये ।

विवेकरूप लक्ष्मणजीने विनय की-प्रभो ! आपकी उपस्थि-तिके प्रथम ही मुझ विवेकको अन्तःकरणकी शुद्धि करनेकी आवश्यकता होती है, अतः मैं अवश्यही आपके साथ चलूँगा।

अब शान्तिस्वरूपा सीताजी कहने लगीं-नाथ ! मैं आपके चरणोंकी संगति कैसे छोड़ सकती हूं ।

चौपाई-प्रभा जाय कहँ भानु विहाई ।
कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥

जैसे सूर्यसे प्रभा और चंद्रमासे चाँदनी पृथक् नहीं हो सकती इसी प्रकार ज्ञान और शान्ति भी अलग-अलग नहीं रह सकते । जहाँ ज्ञान होता है वहाँ शान्ति अवश्य होती है और जहां शांति होती है वहां ही ज्ञान होता है, यों कहकर श्रीसीताजी मौन हो गई ।

रामचंद्रजीने दोनोंका हठ देखकर उन्हें साथ ले चलना स्वीकार कर लिया और लक्ष्मणजीको अपनी मातासे विदा माँगनेके लिए कहा ।

विवेकरूप लक्ष्मणजी भक्तिरूप अपनी माता सुमित्रासे आज्ञा माँगने लगे और कहने लगे-माता ! रामचंद्रजी वनको जाते हैं उनके संग जानेकी हमें आज्ञा दीजिये लक्ष्मणजीका यह अनुराग देख सुमित्राजी गद्गद हो कहने लगीं-

चौपाई-पुत्रवती युवती जग सोई ।
रघुवर भक्त जासु सुत होई ॥

हे पुत्र ! तुमने पुत्रवती बनाया है, जो तुम्हारे अन्तःकरणमें रामभक्ति विराजती है और तुम्हारे भी बड़े भाग्य हैं, जो श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें तुम्हारा ऐसा निश्छल प्रेम है। जाओ पुत्र, जाओ ! ! !

चौपाई–तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥ जो सिय राम काननहिं जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥

तुम्हारी माता सीताजी और पिता रामचन्द्रजी हैं। जब वेही दोनों वन गमन कर रहें हैं तब अयोध्यामें तुम्हारा क्या कार्य्य है? अब तुम वनमें जाकर सीता और रामचन्द्रजीकी शुद्ध भावसे सेवा करना, माताकी आज्ञासे लक्ष्मणजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब राम, लक्ष्मण और सीता वन जानेके लिए सन्नद्ध हो खड़े हुए, तभी जीवात्मा दशरथके सुकर्म रूप सुमंत सारथी अखंडतारूप रथ ले आये। इसके ऊपर तीनों मूर्तियाँ आरूढ़ हो निर्भयरूप वनको चल पड़े।

आज अयोध्या प्रभाहीन हो गई और उसमें हाहाकार मच गया। उधर श्रीरामचन्द्रजीको वनमें जाते-जाते मार्गमें ब्रह्मविद्यारूप तमसा नदी मिली उसीके तटपर जिज्ञासारूप निषाद निवास करता था प्रभुके दर्शन करतेही उसे अपने तन मनकी सुधि ही न रही! वह कहने लगा–

चौ०–सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥ प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयऊ पुनीत आज मम गेहू॥

प्रभो! आपके पधारनेसे यह कुटी आज पुनीत हो गई आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिये। ऐसा कहकर वह रामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़ा।

रामचन्द्रजीने उसे उठाकर हृदयसे लगाकर कहा-मित्र! हमें पार ले चलो, केवटने कहा नाथ!

चौ०-चरण कमल रज कहँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई। छुअत शिला भइ नारि सुहाई पाहनते न काठ कठिनाई॥ जो प्रभु पार अवशिगा चहहू। तो पद पद्म पखारन कहहू॥

आपके चरणोंमें ऐसा गुण है कि वह शिलातकको मनुष्य बना देती है। काठ तो पत्थरसे अधिक कठिन नहीं होता यदि मेरी नाव भी नारी बनकर उड़ गई तो मेरी आजीविका ही नष्ट हो जायगी, अतः यदि आप पार जाना चाहते हैं, तो मैं आपके चरणोंको अवश्य पखारूँगा। ये सब बातें भक्ति और प्रेमकी थीं। रामचन्द्रजी उन्हें सुनकर प्रसन्न हो कहने लगे जैसी इच्छा हो वही करो।

अब तो वह केवट आधाररूप कठौतेमें जल भरलाया और प्रेममें मग्न होकर उसने राम, लक्ष्मण और सीताके चरण धोकर चरणामृत ले स्वयं भी पान किया और सब संबंधियोंको पान कराकर कृतार्थ किया। अनंतर धारणारूप नावमें बैठाकर तीनोंको पार कर दिया। जो स्वयं सबको पार करनेवाले हैं उन्हें केवटने पार उतार दिया यह भक्तिको महिमा है।

पार उतर कर गंगाजोकी रेतमें खड़े हो रामचंद्रजीने निषादको कुछ उतराई देना चाहा। प्रभुका आशय समझ कर सीताजा अपनी मुद्रिका देने लगीं। केवट हर्षसे गद्गद होकर प्रभुके चरणोंमें निपतित हो कहने लगा-

कवित्त-जाति पांति न्यारी करी हमरी तुम्हारी नाथ, केवट करम एक नीकेके निहारिये। तारौ भवसागर दयालु तुम दीनानाथ सरिता उतार दिन हमहूं गुजारिये ॥ नाईसे न नाई लेत धोबीसे न धोबी लेत, देके उतराई मोहूँ तात न बिगारिये। पेशा आश नाई जान तुमको उतार दीनो, आऊंगो तिहारे घाट मोहूँको उतारिये ॥

और यह तो बताइये कि आपके चरणोंकी कृपासे आज मुझे क्या दुर्लभ है ? आपके इस स्वरूपके दर्शन करनेके लिये बडे-बडे ऋषि-महर्षि लक्षाधिक वर्ष पर्य्यंत तपस्या किया करते हैं और ब्रह्मा आदि देवगणभी जिसे देखनेके लिये उत्कंठित बने रहते हैं, उसी मधुर मूर्तिके दर्शन मैं नेत्र भरके कर रहा हूँ इससे अधिक मुझे और क्या चाहिये ? रामचंद्रजीने उसकी ऐसी प्रीति देख कर अपनी अविचल भक्ति दे उसे विदा कर दिया ।

आगे चलकर श्रीरामचंद्रजी महाराज उपरामरूप भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे, महर्षि दूरहीसे उनकी अगवानीकर प्रेम और हर्षके साथ उन्हें अपने आश्रममें ले आये । रामचंद्रजीने रात्रिमें वहां ही निवास किया ।

प्रयागराजमें यमुना और सरस्वतीकी धाराएँ गंगाजीमें मिलकर लय हो जाती हैं, और केवल गंगाजीहीकी धाराका दर्शन होता है तथापि उस स्थानको संगम अथवा त्रिवेणी कहकर वर्णन किया गया है । इसी प्रकार योगाभ्यासी जन

इडा और पिंगला इन दोनोंही नाडियोंको सुषुम्नामें लीन कर निरंतर सुषुम्नाहीका प्रवाह प्रवाहित रखते हैं। इसी अद्भुत त्रिवेणीमें रामचंद्रजीने सीता और अनुज सहित स्नान किया अर्थात् योगाचरण किया।

इसके अनंतर तीनों मूर्तियाँ दमरूप वाल्मीकिजीके आश्रममें पधारीं। महर्षि वाल्मीकिजी उन्हें बड़े भक्तिभाव और आदर-सत्कारके साथ अपने आश्रममें ले गये। वाल्मीकिजी कहने लगे करुणानिधान! जैसे प्रकाश घट पटादि सब पदार्थोंको प्रकाशित करता है और वे पदार्थ उस प्रदीप्तिमान दीपक आदि आलोकको प्रकाशित नहीं करते, इसी प्रकार आप भी सबके द्रष्टा हैं परंतु आपको कोई नहीं देख सकता है और न जानही सकता है, अर्थात् आपका स्वरूप मन और वाणीकी शक्तिसे परे है। वेदतक भी उसका पार नहीं पासकते। उसी शुद्ध स्वरूपके दर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं। मेरे अहोभाग्य हैं आज मेरा जन्म सफल हो गया।

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि"

नेत्र और वाणीमें आप तक पहुँचनेकी शक्ति नहीं है। मन भी आपतक नहीं पहुँच सकता। अतएव हम आपको नहीं जानते न विशेषकर जानही सकते हैं जिससे कि शिष्योंको उपदेश करें। सारांश यह कि आपका स्वरूप ज्ञात विषयसे परे और अज्ञात विषयसे भी ऊपर है—

"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥"

जब मन आपके पास पहुँचनेका प्रयत्न करने लगता है तब वाणी आपके गुणोंका वर्णन करने लगती है, परन्तु दोनोंही आपतक नहीं पहुँचते, सुतराम् थककर मार्गहीमेंसे लौट आते हैं, आपके उसी आवाङ्मनसगोचर स्वरूपके हमें दर्शन हुए, अतएव हम कृतार्थ होगये। महर्षिके ये वाक्य सुन रामचंद्रजी परम प्रसन्न और अति संतुष्ट होकर कहने लगे महर्षि!

चौ०—अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उद्वेग न पावहिं कोई ॥ अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥

जहां हमारे बसनेसे मुनियोंको कष्ट न हो, ऐसा कोई स्थान हमारे रहनेके लिये बताइये। जहांके लिये आप आज्ञा देंगे सीता और सुमित्रानन्दन सहित मैं वहां ही जाकर रहूँगा!

रामचंद्रजीके ये वचन सुन महर्षि वाल्मीकिजीने कहा कि, जब आप सर्वत्र ही व्याप्त हैं तब आपको रहनेके लिये कहाँ बताऊं। जहां न होओ, वहां ही बसो फिर भी आपने प्रश्न किया, अतएव आपके रहने योग्य कुछ स्थान बतलाता हूँ—

चौ०—सुनहु राम अब कहहुँ निकेता। बसहु तहाँ सिय लखन समेता ॥ जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥ भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिनके हृदय सदन तव रूरे ॥

सुनिये, रामचन्द्रजी! सीता लक्ष्मण सहित तुम्हारे रहने योग्य स्थान बताता हूँ, जिनके श्रवण समुद्रके समान हैं और उनमें प्रविष्ट होनेके लिये आपकी कथायें भाँति-भांति की

नदियोंके समान हैं। जिस प्रकार नदियोंके निरंतर भरने पर भी समुद्र पूर्ण नहीं होता ऐसे ही निरंतर आपकी कथाएँ सुननेसे जिनके श्रवण नहीं अघाते उन्हींके अन्तःकरण आपके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान है।

चौपाई-लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरश जलधर अभिलाखे॥ निदरहि सिंधु सरित सर वारी। रूप विन्दु जल होहिं सुखारी॥ तिनके हृदय सदन सुखदायक। वसहु लषण सिय सह रघुनायक॥

जैसे पपीहा मेघके दर्शनकी अभिलाषा करता रहता है ऐसे ही आपके दर्शन करनेके लिये जिन्होंने अपने नेत्रोंको पपीहा बना रक्खा है। पपीहा जैसे अन्य नद नदी सरोवरोंके जलका निरादर करके स्वातीके एक बिन्दु जलसे तृप्त हो जाता है ऐसे ही जो अन्य देवी-देवताओंकी उपासनाकी अवहेलना करके केवल आपके दर्शनरूप एक बिन्दुहीसे तृप्त हो जाते हैं उन्हींके हृदयरूप सुखदायी भवनमें सीता लक्ष्मण समेत आपको निवास करना चाहिये।

दोहा—यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताफल गुण गण चुनहिं, राम वसहु मन तासु॥

तुम्हारा यश निर्मल मानसरोवर है जिनकी रसना उसमें हंसिनी तुल्य विचरती है, एवं मोतियोंके सदृश आपके गुण-गणको ही ग्रहण करती है, हे राम! उनके मनमें निवास करो।

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम्॥

इत्येषा धारणा येषां तेषां हृदयमन्दिरे
निवासं कुरु भो राम सीतया लक्ष्मणेन च ॥

जिनका यह सिद्धान्त है कि अन्य सात करोड़ मंत्र चित्तमें विक्षेपमात्र डालने वाले हैं और रामनाम ही एक परम मंत्र है । हे राम ! सीता और लक्ष्मण सहित आप उन्हींके हृदयमें निवास करिये ।

कवित्त—मनमें मुनीनके कवीनके सुबैननमें, नेहिनके नैन बसो प्रानमें पुरारीके । अवध निवासिनके मिथिला विलासिनके, परम उपासिनके सत्य व्रतधारीके ॥ ज्ञानी गुणवन्तनके सज्जन अनन्तनके, सांचे शुचि सन्तनके पर उपकारीके । राम अभिराम सीता लषण समेत सदा, हृदय निवास करो रसिकविहारीके ॥

चौपाई—यहि विधि मुनिवर सदन दिखाये । वचन सप्रेम राममन भाये ॥ कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक । आश्रम कहौं समय सुखदायक ॥ चित्रकूट गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भांति सुपासू ॥

सुनो राम ! चित्रस्वरूपको कहते हैं और कूट लोह-निर्मित अहरनको कहते हैं, भाव यह है कि जिस प्रकार अहरनके ऊपर धातुओंकी अनेक वस्तुएँ बनाये जानेपर भी उसमें किसी प्रकारका भेद या विकार उपस्थित नहीं होता, ऐसे ही जो व्यक्ति अनेक भांतिके व्यवहारोंको करता रह-कर भी अपने स्वरूपसे विचलित नहीं होता उसी व्यक्तिका नाम चित्रकूट है । (जिसका स्वरूप [चित्र] कूट, (अहरन)

के सदृश हो उसे चित्रकूट कहते हैं) ऐसे चित्रकूटमें आप निवास करिये। येही समयोचित निवासस्थान हैं। महर्षिकी यह सम्मति सुनकर रामचन्द्रजीने चित्रकूटमें निवास किया।

इधर सुमन्तके लौटनेपर जब राजा दशरथने सुना कि राम, लक्ष्मण और सीता वन चले ही गये तब वे भी देह त्यागकर मुक्त हो गये।

"अन्तमता सो गता" इस नियमसे सिद्ध होता है कि प्राणान्तके समय जैसा ध्यान होता है वैसेही गति मिलती है. राजा दशरथका ध्यान अंतसमय रामचन्द्रजीमें लग रहा था इसीसे वे उन्हींमें लीन होकर मुक्त हो गये।

उधर भरत और शत्रुघ्नको रामवनगमन एवं राजाके सुर-पुर सिधारनेका वृत्तांत विदित हुआ तब वे आये और भरतजीने राजा दशरथकी सब और्ध्वदैहिक क्रिया की। (पश्चात्) "देखे बिन रघुबीरके, जियकी जरनि न जाय" कहते हुए व्याकुल हो श्री भरतजी पुरवासियोंके साथ चित्र-कूटमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेके लिए गये। भरतजीकी चित्रकूट यात्राका वृत्तांत जो भी सुनता वही उनके साथ हो जाता, निदान उनके साथ अपार भीड़ हो गई।

चलते-चलते भरतजी उपरामरूप भरद्वाजजीके आश्रममें पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके स्तुति करने लगे तब मुनि महा-राज भरतजीको उपदेश करने लगे हे भरत! सुनो, तुम बड़े ही बड़भागी हो, जो श्रीरामचंद्रजी महाराजके चरणोंमें आपकी

ऐसी प्रीति है, परंतु अब आपका कर्त्तव्य यही है कि जिस प्रकार पिताकी आज्ञासे रघुनाथजीने वनगमन किया है इसी प्रकार तुम भी पिताकी आज्ञा मान राजकाज करो ! भरतजीने उत्तर दिया मुनिराज ! आपका कहना यथार्थ है, परंतु ज्ञानके बिना वैराग्यकी शोभा नहीं होती तब वैराग्यरूप भरत ज्ञानरूप रामके विना कैसे रह सकता है । चीनीमें जैसे बालू मिला देनेसे उसके गुण और स्वरूपमें बाधा पड़ जाती है ऐसेही राज्यसे भरतरूप वैराग्यकी शोभा नहीं है जैसे शर्करा और दूधका संयोग उत्तम और उचित होता है ऐसे ही वैराग्यरूप भरतकी शोभा ज्ञानरूप रामहीके संसर्गसे है ।

ऐसे प्रेमयुक्त वचन सुनकर भरद्वाज मुनि हर्षित हो कहने लगे-हे भरतजी ! तुम्हारी निर्मलमतिको धन्य है, अब तुम जाओ और चित्रकूटके ऊपर श्रीरामचंद्रजीके दर्शन करो । त्रिवेणीमें स्नान कर भरतजीने चित्रकूटकी यात्राकी ।

भरतजीके साथ भीड़ तो अपार थीही, जब ये चित्रकूटमें पहुँचे और लक्ष्मणजीने इनका ठाट-बाट देखा, तब वे रामचंद्रजीसे कहने लगे ।

चौपाई—सुनु खगेश अस को जगमाहीं ।
प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ॥

हे प्रभो ! भरतजीको राज्य-मद हुआ है, उन्होंने सोचा है कि, वनमें रामसे युद्ध कर निष्कंटक राज्य करेंगे । इसीसे वे सेना साथमें लेकर हमपर चढ़ाई की ।

रामचंद्रजीने कहा-लक्ष्मण तुम्हें भ्रम है,जैसे ही एक बुन्द कांजी दूधके समुद्रको नष्ट नहीं कर सकती ऐसे ही राज्यैश्वर्य भरतजीको उन्माद नहीं कर सकता।राज्यमें जिसकी आसक्ति होती है उसी पुरुषको राज्यमद होता है, स्वयं वैराग्यरूप भरतजीको राजमद कभी भी नहीं हो सकता। प्रत्युत यों कहना चाहिये कि भरतजी तो हमारे साधक हैं, क्योंकि आदिमें जिसे वैराग्य होता है उसीको अंतमें ज्ञान होता है। सुतराम् वे राजमदसे नहीं किंतु प्रेमकी अधिकतासे व्याकुल हो हमसे मिलने आ रहे हैं।

राम लक्ष्मणमें परस्पर कथोपकथन हो ही रहा था कि इतनेमें भरत और शत्रुघ्न दोनोंही आकर प्रभुके चरणोंमें निपतित हुए। श्रीरघुनाथजीने उठाकर हृदयसे लगा लिया, अन्य सब लोगोंको आगत-स्वागतसे संतुष्ट कर यथोचित स्थानोंमें ठहरा दिया।

कुछ दिनोंतक सब लोग वहां ही ठहरे रहे और नित्यही सत्संग होता था। फिर रामचंद्रजीने अपनी कृपारूप पादुका भरतजीको देकर विदा किया और भरतजी भी उन्हें अपने शिरपर रखकर अयोध्याजीको लौट आये।

अयोध्याकाण्ड समाप्त।

आरण्यकाण्ड

मुनिमनरंजन श्रीरामचंद्रजी चित्रकूटमें निवास करते थे, तब कर्मरूप जयंतको यह भ्रम हुआ कि रामचन्द्रजी कदा-

चित् ज्ञानस्वरूप नहीं हैं कारण यह है कि इन्होंने यद्यपि राष्ट्र संरक्षणका कर्तृत्व तो अपने ऊपर आरोपित नहीं होने दिया, परंतु सीताजीकी रक्षाका कर्तृत्व तो ये अपने ऊपर अवश्यही स्वीकार करेंगे। अज्ञान जनित इस धारणाके वशीभूत हो काकरूप में परीक्षा करनेकी इच्छासे सीता-जीके चरणोंमें चोंच मारकर भागा।

तब दयालु श्रीरामचंद्रजीने अक्रियरूप बाणका उसके ऊपर प्रहार किया। इसका स्पष्ट भाव यह है कि इसकी फुरना कुछ भी न फुरी। परंतु जयंत इस अक्रियरूप बाणसे बड़ा व्याकुल हो गया, और अपनी रक्षाके लिये सर्वत्र भागा-भागा फिरा, परंतु किसीने भी उसकी रक्षा नहीं की।

निष्काम कर्तृरूप नारदजीने उसे अति विकल देख फिर श्रीरामचंद्रजीहीकी शरणमें जानेके लिये समझाया और वह उनकी शिक्षा मानकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आकर उप-स्थित हुआ। श्रीरामचंद्रजीने सकाम कर्मरूप जयन्तका अंगभंग कर दिया अर्थात् सकाम कर्म करनेसे केवल लौकिक व्यवहार सिद्ध होता है, परमार्थसंबन्धी व्यवहार नहीं। श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार उभय प्रकारके कर्मोंकी मर्यादा निर्धारित कर वहांसे चलकर अकर्मरूप अत्रि मुनिके आश्रममें पहुँचे।

ज्ञानरूप श्रीरामजीने अकर्मका त्याग नहीं किया यह समझकर अत्रिके मनमें बड़ा हर्ष हुआ, अर्थात् अकर्म (अत्रि मुनि) सफल हो गये।

महर्षिने प्रसन्नता से रामचंद्रजीकी अगवानी करके उन्हें अपने आश्रममें ले आये और विनय की प्रभो ! अकर्म तो ज्ञानके आश्रममें ही रहता है तब भला मैं आपकी स्तुति तो करही क्या सकता हूँ ? परंतु आपने मुझे कृतार्थ किया यह आपका अनुग्रह है ।

फिर अकर्मरूप अत्रि मुनिकी पत्नी अनुसूयाजीने बड़े प्रेमके साथ सीताजीको पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म समझाये । वे कहने लगीं—

चौपाई-एकहि धर्म एक व्रत नेमा ।
काय वचन मन पतिपद्प्रेमा ॥

कि हे शान्तिरूप सीते ! मनसा-वाचा-कर्मणा अपने पतिके चरणोंमें अनुराग करना ही पातिव्रतका मुख्य लक्षण है एवं स्त्रियोंके लिये मुख्य कर्त्तव्य यही है कि वे अपने पतिके दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी हों परंतु तुम अपने मनमें यह चिंता कदापि मत करना कि श्रीरामचन्द्रजी महाराजको वनमें आनेसे किसी प्रकारका क्लेश हुआ होगा, क्योंकि ये तो सच्चिदानंद साक्षात् ज्ञानस्वरूप हैं इनके तो नाममात्रका स्मरण करनेसे दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है ।

अनसूयाजीके इस उपदेशको सुनकर मैथिलीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने ऋषिपत्नीको हर्षपूर्वक अभिवादन किया ।

इसके अनन्तर रामचंद्रजीने मुनिसे बिदा मांगी, तब महर्षि कहने लगे—

स०-रोकहिं जो तो अमंगल हो, अरु प्रेमनसे जो कहैं प्रभु जाइये। जो कहैं जाहु न तो प्रभुता, जो कछू न कहैं तो सनेह नसाइये॥ जो हरिचन्द कहैं तुम्हरे बिनु, जी हैं न तो यह क्यों पतियाइये। ताते तुम्हारे पयान समे, हम का कहैं आप हमैं समुझाइये॥

चौपाई-अस कहि प्रभु विलोकि मुनिधीरा।
लोचन जल बह पुलक शरीरा॥

तब मुनिको बार-बार समझाकर उनसे बिदा होकर रामचंद्रजी तेजस्वरूप शरभंग ऋषिके आश्रममें पहुँचे। प्रभुके दर्शन करते ही शरभंगजी प्रेमपुलकित हो कहने लगे-

दोहा-सीता अनुज समेत प्रभु, नीलजलज तनु श्याम॥
मम हिय वसहु निरन्तर, सगुण रूप श्रीराम॥

चौपाई-अस कहि योग अग्नि तनु जारा।
रामकृपा वैकुंठ सिधारा॥

इस प्रकार शरभंगको गति देकर रामचंद्रजी शमरूप सुतीक्ष्णके आश्रममें पहुँचे।

आज मुनिके हर्षकी सीमा न रही, सोचने लगे, कि दीन हीनके घर भी प्रभु पधारेंगे। यह उन्हें भानतक नहीं था, इसीसे प्रभुको देखकर वे सोचने लगे-

"स्वप्ने मतिर्भ्रमति किन्विदमिन्द्रजालम् ?"

हम स्वप्न देख रहे हैं अथवा हमारे ऊपर इन्द्रजालका प्रभाव हुआ है ? सुतीक्ष्णके इस व्यामोहको देख रामचंद्रजीने उन्हें हृदयसे लगाकर कहा-

चौपाई-परम प्रसन्न जानि मुनि मोहीं ॥
जो वर माँगु देहु मैं तोहीं ॥

प्रभुके ये वचन सुन हर्षके उद्रेकसे सुतीक्ष्णके नेत्र खिल गये और वे हर्षविह्वल हो कहने लगे-

दोहा-अनुजजानकीसहित प्रभु, चाप बाण धरि राम ।
मम हिय गगन इन्दुइव, वसहु सदा निष्काम ॥

सुतीक्ष्णकी इस विनयके उत्तरमें "एवमस्तु" कह रामचन्द्रजी आगेको चल पड़े ।

अब श्री रामचन्द्रजी अद्वैतरूप अगस्त्यमुनिके आश्रममें पहुँचे । अगस्त्यजीके हर्ष-सागरने आज अपनी सीमाको भंग कर दिया । इसका कारण यह है कि जितने जप-तप आदि सदनुष्ठान किये जाते हैं उन सबका अथवा कर्म और उपासनाका भी फल ज्ञान ही है, वह ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी अनायास ही स्वयं आकर उन्हें प्राप्त हो गये । ऋषि कहने लगे-प्रभो ! जैसे तन्तुओंमें पट सर्वत्र ही व्याप्त होता है, उससे पृथक् नहीं होता, इसी प्रकार हम अथवा यह जगत् आपसे अलग नहीं है । जब आप सर्वव्यापक हैं तब आपकी स्तुति ही कौन कर सकता है । क्योंकि अभेद और अद्वैत भावमें कौन किसकी स्तुति करे । भेद भाव बनता ही नहीं है । ऋषिने इस प्रकारके वचन कह कर और रामचंद्रजीको सन्तुष्ट कर उन्हें गले से लगा लिया

रामचंद्रजीने कहा—मुनीश्वर ! आप तत्त्वदर्शी हैं, इसीसे ऐसा कहते हैं । परंतु अब आप हमें कोई ऐसा स्थान बताइये

जहां हम कुछ दिन शांतिसे निवास करें और मुनियोंके द्रोहियोंका विनाश करें। ये वाक्य सुन अद्वैतरूप अगस्त्य मुनिने विनय करके कहा—नाथ ! जब आप सर्वव्यापक हैं तब भला आपके रहनेके लिये हम कौनसा स्थान बतायें ? तथापि स्वामिन् ! नरलीला करके आपने जो यह प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं देता हूँ—

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये जडरूप पाँच वट वृक्ष हैं, इन्हीं पांचों वृक्षोंने जिस मनुष्यके हृदय और चित्तको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। भाव यह है कि ये पांचों विषय जिसके चित्तमें व्याप्त रहकर उसे दुःख नहीं देते हैं उसी पुरुषके चित्तका नाम है पंचवटी। नाथ ! आप उसी पंचवटीमें निवास करें।

मुनिकी इस अनुकूल उक्तिको सुनकर प्रभुको बड़ा आनंद हुआ, तब अगस्त्यजीको वरदान देकर रामचंद्रजीने पंचवटीकी यात्रा कर दी।

अगस्त्यजीसे बिदा हो तुरंत रामचन्द्रजी पंचवटी पहुँचे और वहां निवास करने लगे।

एक दिन लक्ष्मणजीने पूछा, नाथ ! ज्ञान वैराग्य और मायाका भेद और रहस्य एवं अपनी भक्तिका वर्णन करके आप मुझे समझाइये और यह भी बताइये कि जीव और ईश्वरमें

क्या भेद है ? जिससे कि मेरा शोक[1] मोह[2] और भ्रम[3] दूर हो जाय ।

लक्ष्मणजीके प्रश्नको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा–

जिस अवस्थामें अहंकारमूलक जाति, वर्ण अथवा आश्रम आदिका भेदभाव नहीं रहता, एवं–

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥"

यह अखिल जगत् ब्रह्मरूप है, इसमें किसी भी पदार्थ-का भेद नहीं है, इस श्रुति वाक्यके अनुसार जिस अवस्थामें संसारके सभी पदार्थोंको मनुष्य ब्रह्ममय अवलोकन करने लगता है, उसीका नाम यथार्थ ज्ञान है ।

जिस अवस्थामें अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य (कामना), ईशत्व और वशीकरण इन आठ प्रकारकी सिद्धियों एवं सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंका मनुष्य तृणके समान परित्याग कर देता है, उस अवस्था का नाम वैराग्य है ।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न योगसिद्धिं न पुनर्भवं वा ।
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यं वांछन्ति वैराग्यपदं प्रपन्नाः ॥

जिस दशामें स्वर्ग, सार्वभौम राज्य, योगसिद्धि, अथवा अन्य अधिकार, परमैश्वर्य और रसाधिपताकी भी इच्छा नहीं रहती उसी अवस्थाका नाम वैराग्य है ।

---

१ इच्छित वस्तुकी अप्राप्ति अथवा प्राप्त हुए पदार्थके विनाश होनेपर जो भाव होता है उसे शोक कहते हैं । २ सांसारिक वस्तुओंमें जो ममत्व होता हैं उसका नाम मोह है । ३ शरीरादि को नित्य और सत्य तथा आत्माको अनित्य एवं असत्य माननेका नाम भ्रम है ।

और लक्ष्मण ! सुनो मैं कोई एक व्यक्ति हूँ और ये पदार्थ मेरे हैं एवं तू अथवा दूसरे जन कोई अन्य हैं तथा उनके पदार्थ भी अलग हैं इसी प्रकारके विचारका नाम माया है और इस मायाने सभी जीवधारियोंको अपने वशमें कर रखा है। अन्य इन्द्रियोंकी गतिके विषयमें तो कहना ही क्या है ? किन्तु जहांतक बुद्धि जा सकती है एवं जहाँतक मनके पहुँचनेकी सामर्थ्य है वह सभी माया है उस मायाके दो भेद हैं—एकका नाम विद्या है और दूसरीका नाम अविद्या है।

अविद्यारूप माया बड़ी दुष्ट है अतएव वह बड़ी ही दुःखदायी है। उसीके अधीन होकर यह जीव संसाररूप गर्तमें पड़ता है अर्थात् अज्ञानके वशीभूत होकर ही जीवको बारंबार जन्म लेना और मरना पड़ता है।

दूसरी विद्यारूप मायाके अधीन यद्यपि जगत्-रचनाके सभी गुण होते हैं, तथापि वह स्वाधीन नहीं है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्
हेतुनानेन सौमित्रे जगद्विपरिवर्तते ॥

केवल वह मेरीही प्रेरणासे चराचर जगत्की रचना करती है, इसीसे हे सुमित्रानंदन ! यह संसार बारंबार उत्पन्न होता है। यह सब मायाका स्वरूप है।

लक्ष्मण ! ज्ञान, वैराग्य और मायाके स्वरूपको तो तुमने ठीक-ठीक समझही लिया होगा, अब भक्तिका स्वरूप और उसकी महिमाका वर्णन करते हैं।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी (योगीप्रियतमो मम) ॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

तपस्वी, ज्ञानी और कर्मयोगी इन सबकी अपेक्षा योगी श्रेष्ठ है,परन्तु जो व्यक्ति एकान्त भावसे भगवद्भक्तिका आचरण करता है वह योगियोंमें भी सबसे प्रधान है । इस प्रधानताका क्या कारण है ? कारण यह है कि-

फलरूपत्वात् सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकता ॥

अन्य उपाय तो केवल साधनमात्र हैं, परन्तु यह भक्ति उन समस्त साधनोंका फल है; इसी कारण भक्ति; कर्मकांड, ज्ञानकांड और योग इन सबकी अपेक्षा विशेष अधिक है ।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म (लक्ष्मण) ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

ईश्वरीय भक्तिका उपार्जन करनेवाले जन जिस सरलता से ईश्वरको प्राप्त कर लेते हैं उतनी सरलतासे योगी, सांख्यमतवादी, वेदपाठी, तपस्वी और त्यागी भी नहीं पा सकते । कारण इसका यह है कि-

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥

अनन्य भक्तिमें श्वपचों और चांडालोंतकको पुनीत कर देनेकी शक्ति है ।

कर्म, ज्ञान और योग साधनके लिये पात्रापात्र अथवा अधिकारी अनधिकारीका बड़ा विचार होता है परंतु भक्तिके लिये इन बातोंकी अपेक्षा नहीं है ।

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥

सिद्धों और गोपियोंके विषयमें तो कुछ कहना ही नहीं है, क्योंकि अंतःकरणकी एकान्तता सम्पादित हो जानेपर तो गौओं, अन्य पशुपक्षियों एवं नागादिकोंको भी ईश्वरकी प्राप्ति हो जाती है।

हे सौमित्रे ! अनन्य भक्तिका माहात्म्य तो तुम्हें विदित हो गया है अब हम भक्तिका स्वरूप और उसकी अनन्यताका विवेचन करते हैं, उसे तुम श्रवण करो।

"सा कस्मै परमप्रेमरूपा अमृतरूपा च"

भगवद्विषयक परमप्रेमहीका "भक्ति" नाम निरूपण किया गया है। उस भक्तिका स्वरूप है अमृत, इसका आशय यही है कि–जो अनन्य भगवद्भक्त होते हैं उन्हें जन्म-जरा-मरणका भय नहीं रहता, किंतु वे–

"न मे भक्तः प्रणश्यति" इस विधि वाक्यके अनुसार सदा जीवित एवं अविनाशी ही बने रहते हैं। भगवद्विष्णुसंबंधिनी इस परम प्रेमरूपा भक्तिकी प्रारंभिक अवस्थामें भक्तोंकी चाहे जो दशा होती हो परन्तु प्रौढावस्थामें तो बड़ाही आनन्द होता है, क्योंकि–

यल्लब्ध्वा पुमान्सिद्धो भवत्यमृतोभवति तृप्तोभवति।

भक्तिरूप अमृतको पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है अर्थात् फिर उसे किसी अन्य साधनोंके साधन करनेकी अपेक्षा नहीं रहती, स्वयं आनन्दस्वरूप होकर मृत्युसे निडर हो

जाता है, अतएव अमृत हो जाता है एवं अन्ततो गत्वा तृप्त भी हो जाता है अर्थात् फिर उसको इसके अतिरिक्त इस लोक अथवा परलोक गत सुख विषयक किसी वस्तुकी इच्छा नहीं रहती। निदान उसकी दशामें एक विलक्षण परिवर्तन उपस्थित हो जाता है।

यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥

अनन्य भक्तिके प्राप्त हो जानेपर मनुष्यकी सब इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं उसे किसी हेतुसे शोक भी नहीं होता, वह किसीसे द्वेष नहीं करता, न वह किसी विषयमें रमण करता है और ईश्वरीय भजन-पूजन-निदिध्यासनको छोड़कर अन्य किसी कामको करनेके लिये उसे उत्साह भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि इन सब बातोंका कारण मन है और मन जब भक्ति द्वारा परमेश्वरमें अर्पित हो गया तब उसके अभावसे इन सबका स्वयं ही अभाव हो जाता है, क्योंकि कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता।

भक्तिके विषयमें एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि-

सा न कामयमाना निरोधरूपात् ॥

भक्ति किसी कामनाकी पूर्तिके लिये नहीं होनी चाहिये, क्योंकि वह निरोधरूपा है। सकाम जो भक्तिकी जाती है वह भक्ति नहीं किन्तु वैश्यवृत्ति अथवा लोक व्यापार है। निरोधका स्वरूप इस प्रकारसे निरूपित हुआ है कि-

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसंन्यासः॥

लौकिक एवं वैदिक समस्त व्यापारोंके परित्याग कर देने-का नाम निरोध है । अब इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि जिनके हृदयमें भगवान्‌की अनन्य भक्तिका साम्राज्य छाया रहता है, उन्हें लौकिक एवं वैदिक किसी भी काम-के करनेकी आवश्यकता नहीं रहती है अथवा न करनेसे कुछ दोषभी नहीं लगता है, इसका कारण यह है कि–

संपूर्णं जगदेवनन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा
गांगं वारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितितुल्यतत्त्वविषया दृष्टे परब्रह्मणि॥

भगवद्विषयिणी अनन्य भक्तिके द्वारा जो सज्जन सर्वत्र ही जगदीशको व्याप्त देखते हैं वे नन्दनकानन और जगत्‌में कुछ भी अन्तर नहीं देखते उनकी दृष्टिमें करील और कल्पवृक्ष समान होते हैं।वे लोग कूप और गंगाजीके जलमें कुछ भी भेद नहीं समझते हैं । अथवा वे सभी कर्मोंको सदनुष्ठान समझकर किया करते हैं, एवं वे लोग वैदिक संस्कृत वाणीमें तथा प्राकृ-तके सामान्य वाक्योंमें भी कोई भेदभाव नहीं मानते हैं । तथा काशी और अन्य भूखंडमें भी अन्तर नहीं समझते हैं ।

(निरोधका एक यह भी रूप है कि)

तस्मै अनन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ॥

ईश्वरके विषयमें अनन्यता अर्थात् जगदीश्वरके समान किसी दूसरेको न समझना और उसके विरोधी) तद्वचति-

रिक्त) देवताओंमें उदासीनता अथवा भगवद्विषयक अनन्यतामें व्याघात उपस्थित करनेवाले अनन्य कर्मोंके करनेमें उदासीनता रखनेका नाम भी निरोध है ।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता।अनन्याश्चिन्तयंतोमाम्

इस भगवदुक्तिके अनुसार ईश्वरके अतिरिक्त अन्य आश्रयों (अवलंबों) के परित्याग कर देनेको अनन्यता कहते हैं ।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भगवान्‌के गुणानुवादका श्रवण करना, उन्हींका कीर्तन और स्मरण करना, जगदीशके पदपंकजकी सेवा, पूजा, अभिवादन, दासवृत्ति, मैत्री और आत्मनिवेदन भक्तिके ये नौ भेद हैं । इनमेंसे किसी एकका भी आचरण करनेसे भगवत् प्राप्ति अवश्य हो जाती है ।

जीव और ईश्वरमें क्या भेद है ? अब इसी विषयका वर्णन करते हैं-

दोहा-माया ईश न आपु कहँ,जानि कहै सो जीव।
बन्ध मोक्षप्रद ईश है, माया प्रेरक सीव ॥

जो अपने आपको मायाका स्वामी नहीं जानता उसीको जीव कहते हैं । एवं जो सबको बन्धनमें डालता अथवा उससे उन्मुक्त करता है एवं जो मायाकी प्रेरणा करता है तथा-

"यस्मात् सर्वमिदं जातं येन सर्वमिदं ततम्"

अथवा

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यस्मिंश्च विलीयन्ते"

जो सबकी सीमा है उसीका नाम ईश्वर है। अर्थात् जीव और ईश्वरमें केवल इतना ही भेद है कि जीव अपने शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूपको नहीं पहिचानता और अपने आपको मायाजनित दुःख-सुखका भोक्ता समझता है। और ईश्वर अपने आपको शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप एवं मायिक विकारोंसे अलग समझता है और जब जीवको ज्ञान हो जाता है तब वह भी "जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई" के अनुसार ईश्वरही हो जाता है।

इन उपदेशोंको सुनकर लक्ष्मणजी आनंदित हुए। इस प्रकारके कथोपकथनमें कुछ समय व्यतीत हुआ। इतनेहीमें तृष्णाने विचार किया कि अब तो उन पिता राजा दशरथकी भी मृत्यु हो गई है जिनकी आज्ञासे राम वनमें आये हैं, इसलिये अब ये मेरे वशीभूत हो यदि अयोध्याको लौट चलें और राज्यको ग्रहण कर लें तो अच्छा हो और अब इन्हें ऐसा करनेमें पिताकी आज्ञाभंग होनेका भय भी नहीं है। सुतराम् वह दुष्टा तृष्णा शूर्पणखा बनकर रामचन्द्रजीके निकट आई और कहने लगी—आप मुझे वर लें। अर्थात् मुझे ग्रहण (धारण) कर राज्यको ले लें। परन्तु दृढप्रतिज्ञ रामचन्द्रजीके ऊपर उस कथनका कुछ भी प्रभाव

नहीं हुआ। निदान उन्होंने इशारेसे लक्ष्मणजीको समझा दिया और लक्ष्मणजीने तृष्णारूप शूर्पणखा के नाक कान काट लिये। तबसे तृष्णा नकटी ही है, इसका आशय यही है कि यदि विचार कर देखा जाय तो तृष्णामें सार कुछ है ही नहीं वास्तवमें वह मिथ्या है। जब वह असार और मिथ्या है, तब उसका किसीके ऊपर प्रभाव क्या पड़े? निदान वह अपने भ्राता मोहरूप खर एवं उन्मादरूप दूषणके पास गई, और उनसे कहने लगी भाइयो! दो तपस्वी कुमारोंने मेरे अभी तो नाक कान ही काटे हैं, परंतु कुछ ही दिनोंमें वे यहाँ आकर सब राक्षसोंका क्षय कर डालेंगे। अतः तुम उनके पास जाकर युद्ध करो और उन्हें परास्त करो (सारांश यही है कि तृष्णाका प्रभाव तो उनके ऊपर नहीं हुआ कदाचित् मोह अथवा उन्माद ही हो जाय तो भी कार्य सिद्धि हो सकती है। कारण कि यदि तुम लोगोंका उनके ऊपर प्रभाव हो जाय (तो राजा दशरथकी मृत्युके कारण उन्हें माता और भ्राताओंका मोह हो जाय और उसीके उन्मादमें वे घरको लौट चलें तो अच्छा है) अब तो खर-दूषणको क्रोध हो आया और वे अपनी सेनाको लेकर चढ़ाई कर राम लक्ष्मणके निकट आये। परन्तु रामचन्द्रजीने एक क्षणमात्रमें उन सबका विध्वंस कर डाला। अब तो शूर्पणखा अज्ञानस्वरूप रावणके पास गई और उसे सब वृत्तान्त सुनाकर उत्तेजित किया। तब रावणने कामरूप मारीचसे कहा कि जाओ-उन तपस्वी कुमारोंके पास जो सुन्दरी नारी है, उसे तुम हर लाओ!

रामका नाम सुनते ही मारीच कांप गया, और कहने लगा राक्षसेश्वर ! तुम उन्हें बालक मत समझो, क्योंकि एक समय उन्होंने विश्वामित्रजीके यज्ञमें विश्वामित्रजीके हृदयमेंसे एक ही वाक्यरूप बाणसे निकाल कर मुझे यहां इतनी दूर फेंक दिया है। तबसे मुझे तो जहाँ-तहाँ वे ही दोनों भ्राता दीखते हैं।

रामपेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः ।
राजरत्नरमणीरथादिकंश्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥

अथवा

दोहा—राजा रथ रमणी रतन, जहँ जहँ परत रकार ।
सुनत होत व्याकुल हृदय, रामरूप उर धार ॥

अतएव तुम भी उनसे वैर मत करो, क्योंकि वे साक्षात् सच्चिदानंद स्वरूप हैं। यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे और मुझे वहां भेजोगे तो वे मुझे तो अवश्य ही मार डालेंगे, किंतु यहां आकर तुम्हारा भी वध करेंगे।

मारीचके ये विडंबना पूर्ण वाक्य सुनकर रावणको आवेश आ गया और कहने लगा-दुष्ट ! तू हमें नीति सिखाने और ज्ञानोपदेश करने चला है, नीच ! तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है, इसीसे तू मेरा कहना नहीं मानता। याद रख पापी मैं एक ही प्रहारसे तेरा संहार कर डालूंगा। रावणके इस कथनको सुन मारीचको बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा—

रामादपि च मर्त्तव्यं मर्त्तव्यं रावणादपि ।
उभयोर्यदि मर्त्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥

जब राम और रावण दोनोंहीके हाथसे मरना है, तब रावणके हाथसे मरना उत्तम नहीं, किंतु रामहीके हाथसे मरना श्रेष्ठ है। क्योंकि उनके हाथसे जिसका वध होता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। यह सोच कर मारीच नामरूप अतिसुंदर मृग बन रामचंद्रजीके आश्रममें आकर चरने लगा।

चौ०—सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर वेषा॥ सुनहु देव रघुवीर कृपाला। यहि मृग-कर अति सुन्दर छाला॥ सत्यसंध प्रभु बधकर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही।

सीताके ये वाक्य सुन कर प्रथम तो रामचंद्रजीने उसे प्रबोध किया कि यह मृग नहीं, किंतु अपनी कामनाही नामरूप मृग हो प्रतीत हो रहा है। क्योंकि मरुस्थलमें जहाँ सूर्यकी किरणें पड़ती हैं वास्तवमें वहाँ जल नहीं होता किंतु मृगकी कामना ही वहाँ जलरूप बन जाती है। ऐसे ही यह मृग नहीं किंतु तुम्हारी कामना ही नामरूप मृग बनी है। यद्यपि यह सुनकर सीताजीको संकोच तो हुआ, तथापि रामचन्द्रजी उनके मनका भाव जानकर मृगके पीछे चल दिये, और उनके पीछे लक्ष्मणजी भी चल दिये। निदान इसी बीचमें अज्ञा-नरूप रावण शांतिरूप सीताजीको चुरा ले गया। भाव यह है कि जब कपटरूप मृग नामरूपको दृष्टिगत हुआ तभी अज्ञानने शांतिको हर लिया। जिस समय रावण सीताजीको लिये जा रहा था तब मार्गमें धर्मरूप जटायु सीताजीकी रक्षा

करनेके लिये रावणसे युद्ध करने लगा। परंतु दुष्ट अज्ञान-रूप रावणने उसे भी निर्जीव कर दिया और स्वयं सीता-जीको लेकर चल दिया। (इसका आशय यही है कि ज्ञानके विना अज्ञानका विनाश कोई भी कर नहीं सकता) राम लक्ष्मण सीताजीकी खोज करते-करते उस स्थानमें आये जहाँ धर्मरूप जटायु जर्जर हुए पड़े थे।

स०—दीन मलीन विहीन सुअंग, विहंग पर्यो क्षिति मध्य दुखारी। राघव दीनदयालु कृपालुको देखि दुखी करुणा भई भारी॥ गीधको गोदमें राखि दयानिधि, नैन सरोजनमें भरि वारी। बारहिं बार सँवारत पंख, जटायुकी धूरि जटानसों झारी॥

रामचन्द्रजीने कहा कि हम तुम्हारे शरीरको स्वस्थ कर देते हैं। परन्तु जटायुने कहा—

चौ०—जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥ सो मम लोचन गोचर आगे। राखहुँ नाथ देह केहि खांगे॥

प्रभो! ऋषि मुनि जन्म जन्मान्तर तक यत्न करते ही रहते हैं परन्तु देहावसानके समय राम नाम नहीं उच्चारण कर पाते परंतु वही राम इस समय मेरे नेत्रोंके सामने उपस्थित हैं तब भला मैं किस लाभके लिये जीवित रहूँ। मैं तो केवल आपके चरणकमलकी प्राप्ति चाहता हूँ। यों कहकर जटायु गद्गद हो रामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़ा, तब ज्ञानरूप रामचन्द्रजीने

धर्मरूप जटायुको अमरपद प्रदान किया और कहा-जो व्यक्ति मुझ (ज्ञान) को प्राप्त करना चाहेगा उसे प्रथम धर्मका संपादन अवश्य करना होगा। सुतराम् जहां धर्म न होगा वहाँ ज्ञान कदापि नहीं होगा। जाओ तात ! तुम अमर रहो !

वहांसे चलकर श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिरूपाशबरीके आश्रमपर पहुंचे। शबरीसे किसी महात्माने कहा था कि तेरे आश्रममें श्रीरामचन्द्रजी आयेंगे, तबसे वह आनन्दमें खूब मग्न हो रही थी, और नित्यही मार्गको बुहार झाड़ साफ रखती थी कि जब प्रभु पधारें तो उनके कोमल चरणोंमें कांटे न गड़ जाँय।

सरकारके भोजनके लिये उसने चख करके मीठे-मीठे बहुतसे भावरूप बेर इकट्ठे कर रक्खे थे, और खट्टे बेरोंको वह स्वयं खा लेती थी। यद्यपि उस तपोवनमें और भी बहुतसे ऋषि मुनि रहते थे परंतु उन सबको अपने तप का अभिमान था, अतः रामचंद्रजी शबरीकी ही कुटीमें पधारे। प्रभुके दर्शन करते ही तन-मनकी सुधि भुलाकर शबरी दौड़ी और उनके चरणोंमें गिर पड़ी। रामने उठाकर हृदयसे लगा लिया और वह उन्हें अपने आश्रममें ले आई। तब शबरीने बहुत दिनोंसे संचित जूंठे बेर प्रभुकी भेंट किये और भक्तवत्सल रामचन्द्रजी खाकर के उसकी श्लाघा करने लगे।

कवित्त—ब्रह्मकेउपासी तपरासी वनवासीवर, विपुल मुनीशनके आश्रम सिधायो मैं। कीन्हें सनमान तिन्ह सहित विधान तऊ, काहू ठौर पेट भरि कबहूं न खायो

मैं ॥ अमृत समान शबरीके इन बेरनमें, रसिक बिहारी मन भायो स्वाद पायों मैं। अवध विहाय वन आयों जबतैं हौं बन्धु, तबते बिचारों सत्य आजही अघायों मैं॥ बेर बेर बेरले सराहैं बेर बेर बहु, रसिक बिहारी देत बंधु कहँ फेर फेर। चाखि २ भाखैं यह वाहूते महान मीठो, लेहु तो लखन यों बखानत हैं हेर हेर ॥ बेरबेर देवैं बेर शबरी सु बेर बेर, तोऊ रघुवीर बेर बेर तेहि टेर टेर। बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावो बेर बेर लावो बेर लावो कहैं बेर बेर ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजीने उसके बेरोंकी प्रशंसा कर उनका भोग लगाया। उधर शबरी तो आनंदके कारण तनमनकी सुधि भूल गई थी, तब प्रभुने उसे कंठसे लगाया और कृतार्थ कर दिया शबरी कहने लगी-प्रभो ! जो व्यक्ति धन, जन, पुत्र, कलत्र आदिसे सम्पन्न किन्तु आपकी भक्तिसे हीन हैं उनका जीवन व्यर्थ ही है। मैं तो अधम नारी नीच वनवासिनी हूँ, और आपकी भक्ति तो मुझमें लवलेशमात्र भी नहीं है तथापि आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। मेरे अहोभाग्य हैं ! रामचन्द्रजीने उपदेश दिया कि—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

रामचन्द्रजी उसे परमपद देकर आगे चल पड़े। और विविध वनवेलि बागों और पशु पक्षियोंकी शोभाका अवलोकन करते रामचन्द्रजी पंपासरपर पहुँचे।

(जिस पुरुषके हृदयमें गंभीरतारूप अमल जल व्याप्त हो रहा है एवं ईश्वरीय अनुकंपासे व्याप्त दैवी संपदारूप कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं उसके हृदयका नाम ही पंपासर है ।) पम्पासरोवरके ऊपर पहुँचकर रामचन्द्रजीने वहाँ विश्राम किया, तब बहुतसे ऋषि-मुनि और नारदजी उनके दर्शन करनेको वहाँ आये और रामचन्द्रजीने सन्तमहिमा और भक्तिकी प्रधानता आदि कई विषयोंका वर्णन उनकेप्रति किया, और कहा कि पुत्र, कलत्र, कनक और कान्तामें किसीको आसक्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि भगवत्-प्राप्तिके लिये सब व्याघात हैं, एवं अपने अनन्य भक्तोंको नारायण इनसे वंचित रखकर उन्हें अपना अक्षयलोक प्रदान करते हैं ।

आरण्यकाण्ड समाप्त

किष्किन्धाकांड

★

पम्पासरसे चलकर श्रीरामचन्द्रजी उन्नतिरूप किष्किन्धापुरीके समीप पहुँचे । उस समय किष्किन्धापुरीमें लोभरूप वालिका साम्राज्य था और सन्तोषरूप सुग्रीव उसके भयसे भागकर एकान्तरूप ऋष्यमूक पर्वतके ऊपर सत्संगरूप हनुमानजीके साथ निवास करते थे । सुग्रीवने जब राम लक्ष्मणकी इस मनोहर जोडीके दर्शन किये तब उन्हें अतीव हर्ष हुआ और उन्होंने सत्संगरूप हनुमानजीको इस युगल जोडीका हाल जाननेके लिये भेजा । हनूमानजीने इनके निकट आकर अभिवादन पूर्वक पूँछा—

कवित्त ।

कर धनु तीर श्याम गौर हौ शरीर धरे, तन मुनि-
चीर धीर वीर बल भौन हौ । शोभा अभिराम नवनी-
रज ललाम दृग, काम छबि धाम इत कीन्हों कहँ गौन
हौ ॥ शीश जटाजूट मुखचन्द छवि लूट वन्दि, मन्द
मन्द हास सुविलास सुखदौन हौ॥करत सनाथ वननाथ-
नके नाथ यह, पूंछौं जोरिहाथ जगनाथ तुम कौन हौ॥

महावीरजीके इस प्रश्नको सुन रघुनाथजीने अपना परि-
चय दिया, तब महावीरजी उन्हें अपने आश्रममें ले आये और
वहाँ उनकी सन्तोषरूप सुग्रीवसे दृढ मित्रता हो गई । निदान
रामने लोभरूप बालीका बध कर उन्नतिरूप किष्किंधा पुरी
का राज्य सन्तोषरूप सुग्रीवको प्रदान किया एवं अक्रोधरूप
अंगदको उसका युवराज बनाकर स्वयं विचारवान् विवेकि-
योंके शुद्धांतःकरणरूप स्फटिक शिलाके ऊपर विराजमान
हो गये । (विहित कर्म और उपासना करनेसे जिनके
अन्तःकरणका विक्षेपरूप मल दूर हो गया है उनके शुद्ध
अन्तःकरणका नाम ही स्फटिक शिला है ।)

जिस समय श्रीरामचंद्रजी स्फटिक शिलाके ऊपर विराज-
मान थे, उस समय वर्षा ऋतु जगतमें अठखेलियाँ कर रही
थी। अखिल अवनीने हरियालीकी मनोहर साड़ी धारण
कर रखी थी, वन उपवनोंने अपने कलेवरका परिष्कार कर

---

१ अथवा "नीरद" ।

नवीन शोभा धारण की थी और नद, नदी, नाले और सरोवरोंमें जल लबालब भरे थे और उनमें तरंगें उठ रही थीं। उस समय मनमें नवीन-नवीन कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं, मानसिक भावोंमें विलक्षण परिवर्त्तन हो जाता है।

रामचंद्रजीने कहा-भैया लक्ष्मण! वर्षाके संयोगसे जिस प्रकार अवनीतलमें भांति-भांतिकी नवीन लता, बेलें, अंकुर और वृक्ष उत्पन्न हो गये हैं, इसी भांतिसे अविवेकी एवं अज्ञानी पुरुषोंके मनमें भोगरूपी जलके संसर्गसे विविध प्रकारकी वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। परंतु वर्षाकाल व्यतीत होते ही जैसे कीट-पतंगादि और लता-बेलों आदिकी सृष्टिका विनाश हो जाता है ऐसे ही जब ज्ञानके सूर्यकी प्रभाका विस्तार होता है तब सब मिथ्या वासनाएँ दूर हो जाती हैं। तुम जानते ही हो कि—यद्यपि जल आकाशमें शुद्ध और स्वच्छ है परंतु यहां आकर भूतलके संयोगसे मलीन हो जाता है। वास्तवमें देखा जाय तो ठीक इसी प्रकार जीवका स्वरूप भी शुद्ध एवं निर्मल ही है परंतु मायाके संबंधसे उसमें मलीनता आ जाती है। जैसे सूर्य भगवान् कीचड और मलिन स्थानोंमेंसे भी अपनी किरणोंके द्वारा शुद्ध जलको ग्रहण कर लेते हैं अथवा शोषण करलेते हैं और मलको अथवा पंकको वहाँ ही छोड देते हैं ऐसे ही ज्ञानरूप सूर्य अपने तेजसे मायाजनित विकाररूप मलको दूर करके जीवके शुद्ध स्वरूपको अपनेमें मिला लेता है।

इस जलका प्रादुर्भाव सूर्यसे ही हुआ है और वह यहाँ आनेके अनन्तर अनेक स्थानोंमें विभक्त हो गया है। यद्यपि

सूर्य एक ही है परन्तु जब उसका आभास अनेक स्थानोंमें स्थित जलमें पड़ता है, तब जलकी भिन्नताके कारण अनेक होनेसे सूर्य भी अनेक रूपसे भासित होता है; परंतु वास्तवमें वह एक ही है । इसी प्रकार ब्रह्मरूप सूर्यसे अविद्यारूप जल आया है एवं उस अविद्यारूप जलमें चैतन्य ब्रह्मका जीवरूप आभास है और वह आभास अविद्याकी विलक्षणता के कारण अनेक रूपसे प्रतीत होता है। जब सूर्य उन भिन्न-भिन्न स्थानोंके जलको शोषण कर लेता है तब वह आभास अथवा सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यसे भिन्न कहीं भी नहीं रहता ऐसेही जब ज्ञानका प्रभाकर अविद्यारूप जलको सुखा देता है तब ब्रह्मका आभास अथवा प्रतिबिम्बरूप यह जीव उससे पृथक् नहीं रह जाता।

अध्यात्मवादिताके साथ वर्षा ऋतुका वर्णन करते-करते रामचंद्रजी कहने लगे—हे लक्ष्मण! सुनो यह सब प्राकृतिक शोभा शांतिरूप सीताके विना मुझे नहीं सुहाती । अतएव हमारी सहधर्मिणी शांति सीताका पता लगाना चाहिये । तुम जाओ और इस कार्यकी सहायताके लिये संतोषरूप सुग्रीवको बुला लाओ। प्रभुकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी सुग्रीव और हनुमानूजीको बुलाकर ले आये। सुग्रीव भयके कारण थर-थर काँपते हुये आकर प्रभुके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगे-

पशुजाति मैं मन्द विषैवश हौं, यह चूक कछू न हिये धरिये । अति दीन पुकारत आरत हौं, हिय भूरि भरो भयको हरिये ॥ तुम दीनहितू अति दीन हौं मैं, अब

तो भ्रम जालहिंको हरिये। अपराध हरौ जन जान हरी,
करुणाकर हौ करुणा करिये ॥

रामचंद्रजीने उसके उन सब अपराधोंको क्षमा कर दिया जो उसने राज्य पाकर रामचंद्रजीकी सेवामें उपस्थित न होनेके संबंधमें और सीताजीकी खोज न करनेके विषयमें किये थे। और उसे आज्ञा दी कि, अब सीताजीकी खोज कराओ। यह सुनकर संतोषरूप सुग्रीवने सत्संगरूप हनुमान्‌जीको तथा यम नियम आदि अनेक वानरोंको सीताजीकी खोज लगानेके लिए भेजा। सब वीर वानर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और उनके शुद्ध स्वरूपको अपने हृदयमें धारण कर सीताजीको ढूँढ़नेके लिये चल दिये। यद्यपि उन्होंने सर्वत्र सीताको ढूंढ़ा, परंतु जब कहीं भी पता न लगा तब वे अगमरूप समुद्रके तटपर पहुँचे और वहां सत्त्वगुणरूप संपातीसे उनकी भेंट हुई। संपातीने कहा, कि शांतिरूप सीताको अज्ञान रूप रावण हरकर ले गया है और भ्रांतिरूप लंकामें उन्हें स्थापित कर रखा है। उसके चारों ओर आशारूप परिखा मनोरथरूप जलसे परिपूर्ण हो रही है; अतएव वहाँ पहुँचना अति कठिन है। यदि कोई वहाँ पहुँच जाय तो लौटकर आना और भी कठिन है, क्योंकि भ्रांतिरूप लंकामें पहुँच जानेपर पहुँचनेवालेको अपने स्वरूपका बोध ही नहीं रहता कि मैं कौन हूँ और किसलिये कहाँसे आया हूँ। निदान वहाँके रहनेवाले वैर-विरोधादि राक्षस उसको नष्ट कर

देते हैं यदि कोई ऐसा अविचल हो कि वहाँ जाकर आत्म-विस्मरण न कर बैठे और रागद्वेषादि राक्षसोंका भी प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने दे तो उसे सीताजीके दर्शन हो सकते हैं और वही लौटकर भी उनकी सुधि ला सकता है।

किष्किन्धाकाण्ड समाप्त।

सुन्दरकाण्ड

★

सम्पातीके वचन सुनकर भ्रांतिरूप लंकामें और तो किसीको जानेका साहस न हुआ परन्तु सत्संगरूप हनुमानजीने अपने अन्तःकरणमें श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण एवं ध्यान किया, तथा सब वानरोंको अभिवादन करके वे अगमरूप सागर तथा आशा-रूप परिखाका उल्लंघन कर भ्रांतिरूप लंकामें पहुँचे। यद्यपि वहाँ उन्होंने एक-एक स्थानकी खूब खोज की परंतु शांति-रूप सीताका पता कहीं भी न लगा। तब महावीरजी बड़े उद्विग्न हुए कि अब क्या उपाय करें जिससे शांतिरूप सीताकी प्राप्ति हो? इतने हीमें उन्हें विहितकर्मरूप बिभीषणके स्थानके दर्शन हुए।

चौ०—रामनाम अंकित गृह सोहा।
वरणि न जाय देखि मन मोहा॥

अब तो महावीरजी हर्षित हो गये, उन्होंने सोचा कि सज्जन और भगवद्भक्तके समागम करनेसे बड़ा सुख होता है, क्योंकि-

तुलयाम् लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

स्वर्ग और मोक्षकी तुलना भगवद्भक्तोंकी संगतिके एक अंशसे भी नहीं की जा सकती । यदि वे आशीर्वाद दे दें तब तो कहना ही क्या है ?

स०-तात मिलै पुनि मात मिलै, सुत भ्रात मिलैं युवती सुखदाई। राज मिलै गज वाजि मिलै, सब काज मिलै मनवांछित पाई ॥ लोक मिलै सुरलोक मिलै, विधिलोक मिलै वयकुंठहु जाई। सुन्दर और मिलै सब ही सुख, सन्त समागम दुर्लभ भाई ॥

निदान हनुमानुजीने सन्त समागमके महत्त्वको विचार कर विभोषणसे मित्रता करके सीताका पता पूँछा । विभीषणने कहा सीताजी अशोकवाटिकामें हैं ।

हर्षगद्गद हो हनुमानुजी अशोकवाटिकामें पहुँचे और वहां उन्होंने अभिवादन कर श्रीमुख वाक्यरूप मुद्रिका उन्हें दी अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने जो सन्देश कहा था वह उन्होंने सीताजीको सुनाया । सीताजीने जब यह प्रश्न किया कि-

चौपाई—सहजबान सेवक सुखदायक ।
कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥

रामचन्द्रजीकी तो स्वाभाविक ही यह बात है कि वे अपने सेवकोंके ऊपर कृपा किया करते हैं, परन्तु यह तो बताओ कि कभी मेरी भी सुरति करते हैं कि नहीं ? सीताजीके वाक्य सुन महावीरजीके नेत्रोंमें जल भर आया और कहने लगे-

कवित्त—गावैं रावरेही गुण ध्यावैं रावरोही रूप, बंधुसे सु रावरीही चरचा चलावैं हैं॥रसिकविहारी रघुवीर ढिग आवै कोउ, तासों हठि रावरीही चरचा चलावैं हैं ॥ करैं कछु काम आदि लेत रावरो ही नाम, रावरी कथामें वसु याम बिलमावैं हैं॥परम विचित्र चित्र रावरो सुपत्रनपै लिखि लिखि बार बार हृदयसों लगावैं हैं ।

और माता ! तुम शोक मत करो, क्योंकि जैसे तन्तुसंयोग पट, दुग्धसे मधुरिमा, अग्निसे उष्णता और चन्द्रमासे चंद्रिका भिन्न नहीं है ऐसे ही ज्ञानसे शांति अथवा रामसे सीता भी पृथक् नहीं है। किंतु अज्ञानरूप रावणके कारण लीलामात्रके लिए पृथक् प्रतीत होती है । इन वाक्योंको सुनकर सीताजीको अतीव हर्ष हुआ और उन्होंने श्रद्धारूप अपनी चूडामणि श्रीरामचंद्रजीको देनेके लिये महावीरजीको दी ।

महावीरजीने जानकीजीसे आज्ञा लेकर अनृतरूप वृक्षों, बेलों आदिको नष्ट कर डाला । एवं बहुतसे राक्षसोंका भी वध किया जो उसकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त थे ।

अब तो अज्ञानरूप रावणने क्षुब्ध होकर रागरूप मेघनादको भेजा,और वह हनुमान्जीको पकड़कर ले गया।(इसका अभिप्राय यह है कि भ्रांतिरूप लंकाकी शोभाका अवलोकन करके महावीरजीको राग हो गया) परंतु जब सत्त्वगुणरूप सम्पातीके उपदेशको स्मरण किया तो उन्होंने क्षणभरमें भ्रांतिरूप लंकाको भस्मीभूत कर दिया । फिर समु-

द्रको पार करके अपने साथियोंसे मिले और श्रीराम-चन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया। हनुमान्‌जीको देखते ही प्रभु कहने लगे-

कवित्त-मेरी प्राणप्यारी तुम निज दृग देखी सत्य, भाखौ वेगि नेकहु न शंक हिये राखौ वीर। कित है कहां है केहि देश किहि वेशमाहिं, ग्राम नाम ठाम धाम वरणि धरावौ धीर। रसिकविहारी कहौ जनकदुलारी कहाँ, जीवै किमि बाला कैसे सहत वियोग पीर। मेरो दिनरात विरहाग्निहू जरावै गात, सपदि सिरावौ बरसायकै सुबैन नीर।

चौ०-कहहु तात केहि भांति जानकी।
रहति करति रक्षा स्वप्रानकी॥

यद्यपि सीताकी दशाका स्मरण कर महावीरजी अधीर हो रहे थे तथापि उन्होंने गद्गद स्वरसे यह उत्तर दिया कि--

दोहा-नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि वाट॥

चौ०-चलत मोहिं चूडामणि दीन्ही। रघुपति हृदय लाय सो लीन्हीं। नाथ युगल लोचन भरि बारी। वचन कहे कछु जनकदुलारी॥ अनुज समेत गहेउ प्रभुचरणा। दीनबन्धु प्रणतारति हरणा॥ मन क्रम वचन चरण अनुरागी। केहि अपराध नाथ मोहिं त्यागी॥ अवगुण एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्राण न कीन्ह

पयाना। नाथ सो नयननकर अपराधा निसरत प्राण करहिं हठि बाधा॥ बिरह अनल तन तूल समीरा। श्वास जरै छिनमाहिंशरीरा॥ नयन स्रवैं जल निजहित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी॥ सीताकी अति विपति विशाला। बिनहिं कहे भल दीनदयाला॥

रामचन्द्रजीने कहा महावीर! जो मनसा-वाचा-कर्मणा हमसे अनुराग करता है उसे दुःख कैसे हो सकता है। यह सब अज्ञानजनित माया है और हे मित्र! तुमने जो हमारा उपकार किया है उससे हम कदापि उऋण नहीं हो सकते।

इस प्रकार कहकर रामचन्द्रजीने अज्ञानरूप रावणका वध करनेके लिये भ्रांतिरूप लंकाके ऊपर चढ़ाई कर दी जब सब सेना सहित रामचन्द्रजी समुद्रके तटपर पहुँचे तब विहित कर्मरूप विभीषणने अज्ञानरूप रावणको बहुत कुछ समझाया कि-

बन्धुवर! रामचन्द्रजी प्राकृत मनुष्य नहीं हैं, किन्तु साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उनसे विरोध करनेसे तुम्हारा अवश्यही विनाश हो जायगा। विनाशकाल उपस्थित होनेपर हितकी बात और पथ्य दोनों ही अच्छे नहीं लगते। निदान रावणने विभीषणकी एक न मानी और उसका निरादर कर कहा-दुष्ट! मुझे इतना भय देव-दानव किसीकी ओरसे भी नहीं है जितना तुझसे है, क्योंकि उनकी रहन-सहन भाव-भूषा सभीमें हमसे अंतर है, परंतु तेरी रहन- सहन चालढाल

सब हमारी जैसी ही होने पर भी तेरे भाव हमसे भिन्न हैं, अतएव वे सब तो मेरे प्रगट शत्रु हैं और तू गुप्त शत्रु है। गुप्त शत्रु जितना अपकार कर सकता है प्रगट शत्रु उतना नहीं कर सकता। अतएव पामर ! तू हमारे यहांसे निकल जा। विभीषण वहांसे चल दिये और चलते समय कह गये कि—

चौ०—देखिहौं जाय चरण जलजाता। अरुण मृदुल सेवक सुखदाता॥ जे पद परसि तरी ऋषि नारी। दंडक कानन पावन कारी॥ जे पद जनकसुता उर लाये। कपट कुरंग संग धर धाये। हर उर सर सरोज पद जेई। अहो भाग मैं देखब तेई॥

दोहा—जिन पायँन कर पादुका, भरत रहे मन लाय।
ते पद आज विलोकिहौं, इन नयनन अब जाय॥

तुरन्त ही विभीषण समुद्रके इस पार रामदलमें आगये। यद्यपि उस समय मुख्य-मुख्य वानरोंने रामचंद्रजीको यही सम्मति दी कि राक्षसोंका क्या विश्वास, न जाने किस लिये आया है ? अतएव उसे यहां नहीं आनेदेना चाहिये—

चौ०—जानि न जाय निशाचर माया।
कामरूप केहि कारण आया॥

तथापि रामचन्द्रजीने बोधमय यही वाक्य कहे कि—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

जो दुराचारी और पापी हैं, जो नीच मनुष्य मूढ हैं अर्थात् जिन्हें धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है जिनके ज्ञानको मायाने हर लिया है, एवं जो असुर भावको प्राप्त हो राक्षसी कर्म करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, ऐसे जन मेरे पास कदापि पहुँच ही नहीं सकते। अतः जब वह मेरे पास आया है तब अवश्य ही सज्जन होगा। अतः हे वानरो! तुम उसे अवश्य ले आओ ? यदि वास्तवमें वह कपटसे आया है तब लक्ष्मणजी उसका विनाश ही कर डालेंगे। यदि वह शरणागत है तब तो हम उसे प्राणोंके समान ही रखेंगे। निदान प्रभुकी आज्ञासे वानर उसे लिवा लाये। विभीषणने चरणोंमें निपतित हो विनय करी--

दोहा--श्रवण सुयश सुनि आयऊँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरतहरण, शरण सुखद रघुवीर ॥

चौ०दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा।
भुज विशाल गहि कंठ लगावा ॥

सवैया--जा हित शंभु सुरेश गनेश, महेश महामख साधन फेंटे। जा हित योगि जपी तपसी, यति जाल जपैं तन छार घुरेंटे॥ कौतुक या 'छलिराम' लखो, पुलके तन यों अनुराग लपेटे। राक्षसवंश विभीषणसों, भरि अंकमें भाय भरत्थसे भेंटे ॥

विभीषणने कहा, नाथ ! मेरी उत्पत्ति राक्षस कुलमें हुई है तथापि आपने मुझे अपनाकर कृतार्थ कर दिया। मेरे अहो-

भाग्य हैं। रामचन्द्रजीने कहा, तुम तो हमारे अनन्य भक्त हो हमारा स्वभाव तो नीचातिनीचको भी तार देनेका है—

अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्थितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्तिं निगच्छति।
धर्मात्मन् प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

जो दुराचारी व्यक्ति सबका परित्याग करके अनन्यभावसे मेरा भजन करता है उसे सदाचारी ही समझना चाहिये, क्योंकि वह दृढ विश्वासी है। और उस दृढ विश्वासके कारण वह शीघ्रही धर्मात्मा होकर नित्य ही शान्ति भोगता है, धर्मात्मन्! सारांश यह है कि—मेरे भक्तका विनाश कदापि नहीं होता।

यह कहकर रामचन्द्रजीने विभीषणको बहुत समझा-बुझाकर संतुष्ट किया और कहा कि तुम सानन्द हमारे समीप ही सदा निवास करते रहो।

श्रीसुन्दरकाण्ड समाप्त

लङ्काकाण्ड

★

लौकिक और पारलौकिक सभी कामोंमें प्रायः गुरुकी आवश्यकता रहती है, कारण कि गुरुकी कृपाके विना कोई भी काम नहीं चल सकता। इसी कारण रामचन्द्रजीने गुरुरूप रामेश्वरकी पूजा की, और आशारूप समुद्रके ऊपर अपनी लीलारूप सेतु बनाकर वे अपनी सेना सहित उसके पार हो गये। (इसका स्पष्ट भाव यह है कि जो पुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाका स्मरण अथवा कीर्तन करेगा वह अवश्यही आशारूप समुद्रके पार हो जायगा) जब रामचन्द्रजीका कटक समुद्रके पार पहुँचा तब सुमतिरूपा मन्दोदरीने अज्ञानरूप रावणको बहुत कुछ समझाया कि-रामचन्द्रजी साधारण मनुष्य नहीं हैं किन्तु ये साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप हैं, अतएव इनसे वैर मत बढाओ-

स०-पुनि कर जोरि निहोरि विनय करि, पै भरि नैन लगी समझावन। पिय रघुवीर मनुज जनि जानहु, तुम-कहुँ जीति गयो उन धावन। अजहुँ भलो चलि मिलहु सहित सिय, आये तुमही करन हित पावन॥ निशिचर नाथ रहौजग निर्भय, जो पिय मानहु मोर सिखावन॥

सुमतिरूप मंदोदरीका यह उपदेश अज्ञानरूप रावणको अच्छा न लगा, वह कहने लगा नारी जाति स्वभावहीसे मन्दमति होती है, इसीसे तूभी ऐसा कहती है। स्त्रियोंकी तुच्छ और कायरता की बातोंके ऊपर वीर पुरुष ध्यान नहीं देते हैं, जा तू घरमें बैठ। मन्दोदरी विचारी उसका काल निकट जान बैठी रही।

तदनन्तर अज्ञानरूप रावण अपनी राज सभामें आया और अपने मंत्रियोंसे युद्धके विषयमें सलाह करने लगा-

इधर श्री रामचन्द्रजीने अक्रोधरूप अंगदजीको नियमानुसार उपदेशरूप पत्र लेकर आज्ञानरूप रावणके पास भेजा। और अक्रोधरूप अंगदजीने भी रावणको बहुत कुछ समझाया कि, अरे अज्ञान! जिनके एक सेवकने तेरी भ्रांतिरूप लंकाको क्षणमात्रमें भस्मीभूत कर दिया उनसे तू क्यों वैर बढ़ाता है, वे तो साक्षात् स्वयंप्रकाश एवं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनसे वैर कर फिर तुम किसके सहारे तर सकते हो? यह सब कुछ सुनकर भी रावण अभिमानकीही बातें करता रहा। तब अंगदजीने कहा अरे रावण! हमारे प्रभुका तो कहना ही क्या है उनकी तो सत्तासे यह जगत्‌ही चेतन हो रहा है मैं उनका एक लघु सेवक हूँ मेरा ही चरण किसीके टालनेसे नहीं टलेगा। यों कहकर अक्रोधरूप अंगदने स्थिरतारूप अपना चरण सभामें रोप दिया।

रावणकी आज्ञासे बहुतसे राक्षसोंने अंगदजीके पैरको उठानेकी चेष्टा की परन्तु कोई भी चरणको नहीं उठा सके, और सब थक गये। निदान रावण स्वयं चरण टालनेको उठा तब अंगदजीने हँसकर और यह कहकर पैर उठा लिया कि-रावण तू हमारे पैर क्यों पकड़ता है? श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी शरणमें जानेसे तेरा कल्याण होगा। यह सुन रावण लज्जित हो गया। और अंगदजी लौटकर रामचन्द्रजीके पास चले आये।

रामचन्द्रजीने देखा कि रावण किसी प्रकार नहीं मानता तब उन्होंने वीर वानरोंकी सेनाको राक्षसोंके विनाश करनेकी आज्ञा दे दी और युद्ध होने लगा। जब वानरोंने अनेक राक्षसोंका वध कर डाला तब अज्ञानरूप रावणने रागरूप मेघनादको युद्ध करनेके लिये भेजा और उसने विवेकरूप लक्ष्मणजीके ऊपर आसक्तिरूप अपनी शक्तिका प्रयोग किया जिससे लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये। (इसका आशय यही है कि अनात्मपदार्थोंमें अनुरागजनित आसक्ति होनेसे कुछ कालके लिये विवेक मूर्छित हो जाता है, नष्ट नहीं होता) सुतराम् रामचन्द्रजीकी सेनामें हाहाकार मच गया। निदान सुकर्मरूप विभीषणने रामचन्द्रजीसे कहा, हे प्रभो ! लंकामें धैर्यरूप सुषेण वैद्य निवास करता है, वह यहां आये तो लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर हो सकती है। निदान सत्संगरूप हनुमान्‌जी धैर्यरूप सुषेणको ले आये, तब सुषेणने कहा, लक्ष्मणजीका मरण नहीं हुआ है किन्तु वे मूर्च्छित हो गये हैं (इसका सार यही है कि विवेकी पुरुषोंको अनात्मपदार्थोंमें यदि तद्विषयक अनुराग हो भी जाय तो उस आसक्तिसे उसका विवेक नष्ट तो नहीं हो जाता किन्तु मूर्च्छित हो जाता है एवं निज बोधस्वरूपकी स्मृति होते ही मोह दूर हो जाता है अतएव मेघनादकी आसक्ति रूप शक्तिसे विवेकरूप लक्ष्मणजी केवल मूर्च्छित ही हुए हैं। सत्शास्त्ररूप द्रोण पर्वतमें स्मृतिरूप संजीवनी जडी है यदि लक्ष्मणजीको वह प्राप्त हो जाय तो इनकी मूर्च्छा दूर हो जायगी।)

सुषेणके ये वाक्य सुन रामचन्द्रजीने महावीरजीको उसे लाने की आज्ञा दी, और वे मार्गमें कपटरूप कालनेमिका वधकर सत्‌शास्त्ररूप द्रोणाचलपर पहुँचे। वहां उन्होंने देखा कि सम्पूर्णही वाक्यरूप औषधियाँ अपने अपने स्वरूपकी स्मृति करा-नेवाली हैं अतएव वे सत्‌शास्त्ररूप पर्वत को ही उठाकर ले आये।

जिस समय हनुमान्‌जी उस पर्वतको लिये हुए अयोध्याके ऊपर पहुँचे तब भरतजीको भ्रम हो गया, उन्होंने समझा कि कोई राक्षस अयोध्याके ऊपर पहाड़ फेंककर उसे नष्ट कर देनेके लिये आ रहा है। निदान उन्होंने बाण मारा और हनुमान् राम-राम कहते हुये भूतलके ऊपर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। रामनाम सुनते ही भरतजी चकित हो उनसे पूँछने लगे कि तुम कौन हो ? हनुमान्‌जीने सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब भर-तजी कहने लगे कि वैराग्यके बिना सत्संग एवं सत्‌शास्त्रोंके वाक्य विवेक स्मृतिको जागृत नहीं कर सकते। क्योंकि वैराग्य के बिना मोह निवृत्ति नहीं हो सकता। अर्थात् मुझ वैराग्यरूप भरतके बाणका आश्रय लेकर ही तुम सत्-संगरूप महावीर सत्‌शास्त्रोंके वाक्योंसे विवेकरूप लक्ष्मणको जागृत कर सकते हो।

यह उक्ति सुनकर हनुमान्‌जी प्रसन्नतासे कहने लगे-आपके अनुग्रहसे सत्‌संगरूप हनुमान्‌जी और सत्‌शास्त्रोंके वाक्यरूप उपदेशही विवेकको जागृत कर सकते हैं। यों कह कर भरतजी को अभिवादन कर वे वहांसे चल कर श्रीरामचन्द्रजीके

कटकमें आये और उन्हें प्रणाम किया। निदान शास्त्रोपदेशके वाक्यरूप संजीवनीसे विवेकरूप लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर हो गई तब उन्होंने चैतन्यता प्राप्तकर ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया। अनुजको हृदयसे लगाते ही रामचन्द्रजी तो आनन्दमें मग्न हो ही गये किन्तु उनकी सेनामें भी अपार हर्ष छा गया।

प्रकृतिका विचित्र नियम है जिस कार्यसे एकको हर्ष होता है उसीसे दूसरेको खेद होता है, विवेकरूप लक्ष्मणकी जिस जागृतिसे रामचन्द्रजीके कटकमें हर्षकी सीमा भंग हो गई थी रावणकी सेनामें वही जागृति घोर विषादका कारण बन गई रावणने खिन्न होकर क्रोधरूप कुम्भकर्णको जगाया।

पहले तो कुम्भकर्णने रावणको बहुत समझाया परन्तु जब वह नहीं माना तो कुम्भकर्ण अपने क्रोधरूपको धारण-कर रणांगणमें उपस्थित हुआ। कुम्भकर्णकी विकराल मूर्ति देखकर रामचन्द्रजी भी घनगर्जनविनिन्दक ध्वनि करने लगे, तब कुम्भकर्णने कहा-आपका यह गर्जन-तर्जन इसलिये निरा वृथा ही है कि-तुम्हारे ऊपर तो मैं प्रथमही विजय प्राप्तकर चुका हूँ। क्योंकि अल्पवस्तु नारीहरणके कारणही तुम्हें मुझ क्रोधके वशीभूत हो अरिमर्दन कर्ममें प्रवृत्त हो जाना पड़ा है और अनगिनत जीवोंका वध करना पड़ रहा है।

रामचन्द्रजीने कहा अरे अविचारी नीच! जिसे तू तुच्छ नारी बतलाता है वह हमारी शक्ति है और उसीके प्रभावसे

हम क्षणभरमें तेरा विनाश कर डालेंगे। तू निशिचर वधको जीवहिंसा एवं क्रोधको उसका कारण कहता है, यह भी तेरा अविचार ही है, क्योंकि जिस एक जीवसे अनेक प्राणधारियोंको कष्ट होता हो तो उस एक जीवको मार डालनाही उचित है उसका वध हिंसा नहीं किन्तु जीवदया है, इसीसे ऐसा करनेसे एक प्रकारका पुण्यही प्राप्त होता है। हम तो ज्ञानस्वरूप हैं अतएव काम क्रोधादिका विनाश करना तो हमारा स्वाभाविक धर्म है। इस प्रकार शान्त वाक्यरूप बाणोंके आघातसे क्रोधरूप कुम्भकर्णका तुरन्तही विनाश होगया। इसका आशय यह है कि ज्ञान, शान्त और सहनशीलतासे क्रोध अवश्य नष्ट हो जाता है।

रावणने सुना असंभव बात संभव हो गई क्रोधरूप कुम्भकर्ण जैसा आदर्श वीर भी मर गया तब तो उसका भी धैर्य भंग हो गया और उसे निश्चय हो गया-जिसने लोभरूपवाली मोहरूप खर, उन्मादरूप दूषण एवं क्रोधरूप कुम्भकर्ण जैसे वीरोंका वध किया है वह साधारण नर हो नहीं सकता। अवश्यही वह जगदीश्वर है। रावणके हृदयमें इस प्रकारके विचारोंका ज्वारभाटा आ ही रहा था कि-इतनेमें रागरूप मेघनाद फिर आया और कहने लगा-छोटेसे बालकोंके प्रतिपक्षी होनेपर आप इतना चिंतित क्यों होते हैं। आप जरा मेरा पराक्रम देखें। यों समझा-बुझाकर मेघनाद समरभूमिमें आया, परन्तु विवेकरूप लक्ष्मणजीने अनायास ही उसका वध कर

डाला, एवं रतिरूप सुलोचना भी अपने पतिके साथ सती हो गई।

तदनन्तर रावणने द्वेषरूप अहिरावणको बुलाया और सब वृत्तान्त कह सुनाया कि अब तुम्हीं उन बालक वैरियोंके वधका कोई उपाय करो। 'बहुत अच्छा' कहकर अहिराव-णने रावणकी बातस्वीकार करली, और वह छलकर राम लक्ष्मणको ले गया। परन्तु, सत्संगरूप हनुमानजी उसका वध कर तथा निर्लोभरूप मकरध्वजको उसके स्थानमें नियुक्त कर राम लक्ष्मणको पुनः ले आये।

रावणने देखा कि ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीने सभी दैत्योंका वध कर डाला। वह उद्धत और उन्मत्तसा बन-कर गर्जता हुआ स्वयंही युद्ध-भूमिमें आ उपस्थित हुआ। और कहने लगा-अरे राजकुमार राम! मेरे सन्मुख ठहरनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है तब मेरा विनाश तुम शिशु तो कर ही क्या सकते हो? कोई भी ऐसा करनेकी पर्याप्त शक्ति नहीं रखता क्योंकि जिस दिन मुझ अज्ञानरूप रावणका विनाश हो जायगा उस दिन तो तुम्हारा ही अस्तित्व रहेगा। रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे संबंध रखनेवाला दृश्य विषय भी कुछ न रहेगा, कारण कि इनका कारण तो केवल मैं (अज्ञान) हूं। अतः "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्य-पायः" इस वाक्यके अनुसार मेरा नाश हो जाने पर ये

सब कैसे रह सकते हैं ? अतएव मुझसे युद्ध करनेके लिये तुम्हारा प्रयास करना व्यर्थ ही है ।

रामचन्द्रजी बोले—जैसे कंकण कुंडल अथवा घट पटादि व्यवहार वास्तवमें कुछ भी नहीं हैं ऐसेही विचार कर देखा जाय तो ये दृश्य पदार्थ वास्तवमें कुछ भी नहीं हैं। जो वस्तु आदि अन्तमें होती है वही मध्यमें भी होती है । जिसका आदि अन्त नहीं उसका मध्य कैसे हो सकता है ? मृगतृष्णाका जल, वन्ध्या पुत्र और शशविषाण ये सब ही आदिमध्यान्त रहित हैं ऐसे ही दृश्य पदार्थ भी केवल भ्रांतिमात्र हैं ।

रावणने हँसकर कहा—राम "स्वर्गकामो यजेत" जिसे स्वर्ग प्राप्त करनेकी अभिरुचि हो वह यज्ञका अनुष्ठान करे, इत्यादि वाक्योंका अवलोकन करनेसे कर्मफलजनित स्वर्गादि लोक प्राप्ति जब आवश्यक एवं नित्य प्रतिपादित होती है तब यह संसार मिथ्या कैसे माना जा सकता है ? रामचन्द्रजी कहने लगे कि रावण !—

"यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते तथामुत्र-
पुण्यचितो लोकः क्षीयते"

जैसे इस लोकके धन—जन आदि पदार्थ जो पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाले हैं, नष्ट हो जाते हैं ऐसे ही पुण्यजनित स्वर्गादि लोक भी नाशवान् ही हैं । स्वर्गादि लोकोंकी अनित्यता ही सिद्ध होती है, इसीसे तो श्रुतिने कहा है कि—

'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

स्वर्गादि लोकोंको अनित्य मानकर जिज्ञासुको चाहिये कि ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये हाथमें समिधा लेकर वेदपाठी एवं ब्रह्म-निष्ठ गुरुके निकट जाये। इसका भी स्पष्ट आशय यही है कि—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"

ब्रह्म सत्य है और यह दृश्य जगत् सब मिथ्या है ।

इन वाक्योंका भावार्थ यह है कि नित्यस्वरूप ईश्वर ब्रह्मकी ही प्राप्तिकी इच्छा करनी चाहिये अनित्य संसारकी नहीं । संसारसे विरक्त होकर निष्काम कर्म करनेका नाम सत्यकी यथार्थ इच्छा है । निष्काम कर्म करनेसे ज्ञान की प्राप्ति होती है । और ज्ञान नित्य है । अतएव कर्मकाण्ड प्रतिपादित ऊपर कहे हुए सब वाक्योंका फलितार्थ यह होता है कि निष्काम कर्म करनेवाले पुरुषको अक्षय पुण्यफल-स्वरूप ज्ञानकी उपलब्धि होती है और वही ज्ञानस्वरूप मैं राम हूँ । निदान मुझ ज्ञान स्वरूप रामहीको वेद भी अक्षय एवं नित्य कहकर प्रतिपादन करता है ।

रावण! जो वस्तु आदि अंतमें होती है वही मध्यमें भी होती है प्रकृतिका यह अमिट नियम है, जब आदि अन्तमें तो मैं ज्ञान वर्त्तमान हूँ तब मध्यमें अज्ञानस्वरूपके अस्तित्व तुम कहाँसे आ गये ? अतएव वास्तवमें तुम मिथ्या ही हो।

रामचन्द्रजीके इन वाक्यरूप बाणोंसे अज्ञानरूप रावणका तुरन्तही नाश हो गया । तब देवगण पुष्प वर्षणकर रामचन्द्रजीकी जय जयकार करने लगे । वानरी सेनामें आनन्द छा गया । अज्ञानरूप रावणके नष्ट होते ही शान्तिरूपिणी सीता ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त हो गई। उस समयके अपार आनंदका अनुभव शान्त पुरुषही कर सकते हैं ।

निदान ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी विहित कर्मरूप विभीषणको लंकाका राज्य देकर और ऋषि मुनि तथा देवताओंको निर्भय बनाकर सीता और अनुज सहित अयोध्याजीको वापस चल पड़े ।

श्रीलंकाकाण्ड समाप्त

उत्तरकाण्ड

★

आज अयोध्यामें आनन्दकी लहरें उठ रही हैं, शुभ शकुन हो रहे हैं, परन्तु भरतके हृदयमें हर्ष तथा उद्वेग परस्पर टकराते और कौतूहल उत्पन्न करते हैं, वे सोचते हैं वनवासका अवधि तो पूर्ण हो गई परन्तु न जाने राम कब आयेंगे ? कहीं मुझे भक्तिभावरहित अधम जन जानकर त्याग तो न देगें ? रामकी अगाध भक्ति में तन मन को सुधि भूलकर भरतजी कहने लगे–

चौ०-बीते अवधि रहैं जो प्राना ।
अधम कवन जग मोहिं समाना ॥

इस प्रकार चिन्तासागरमें डूबते हुये भरतके लिये दृढ़ अर्णव पोतके समान सत्संगरूप हनुमान्‌जी आये और उन्होंने रामचन्द्रजीके पधारनेकी सूचना दी ।

रामचन्द्रजीका पधारना सुनकर भरतजी समस्त पुरवासियोंको साथ लेकर रामचन्द्रजीसे भेंट करनेके लिए चल पड़े । जन्मके दरिद्री जिस प्रकार रत्नोंकी राशि लूटने के लिए जाते हैं उसी भांति ये लोग रामदर्शनके लिये चले जा रहे हैं। रामचन्द्रजीके दर्शनकर भरतजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और राम ने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया । फिर रामचन्द्रजीने अपनी माताओं तथा समस्त पुरवासियोंसे मिले !

तदनन्तर वेदरूप वसिष्ठजीने इस प्रकार आनन्दरूप लीलाका अवलोकन करके सबकी सम्मतिसे पंचकोशरूप अवधके विज्ञानरूप राजसिंहासन राज्याभिषेकके लिये सुसम्पन्न कराया ।

उस विज्ञानरूप सिंहासनके ऊपर अटल आनन्दरूप छत्र विराजमान हो रहा था। विवेकरूप लक्ष्मणके हाथमें प्रहर्षण-रूप व्यजन, वैराग्यरूप भरतजीके हाथमें संरक्षणरूप चमर एवं विचाररूप शत्रुघ्नजीके हाथमें संगोपनरूप मोरछल शोभा दे रहे थे। सिंहासनके दक्षिण पार्श्व भागमें सत्संगरूप हनुमानूजी, सन्तोषरूप सुग्रीव तथा अक्रोध रूप अंगद एवं सुकर्मरूप विभीषण आदि वामपार्श्वमें विराजमान थे। विश्वास-रूप विश्वामित्र एवं वेदरूप वसिष्ठ आदि महर्षियोंका समाज सिंहासनके समीप विराजमान था। किसी कवि की लेखनीमें ऐसी काल्पनिक शक्ति नहीं है कि उस समयकी अलौकिक छटा का वर्णन कर सके, निदान शुभ मुहूर्त उपस्थित हुआ जान-

"प्रथम तिलक वशिष्ठ मुनि कीना"

वसिष्ठजीने रामचन्द्रजीका राज्याभिषेक किया। ब्रह्मादि देव समाज आकाशमें उपस्थित हो जय जयकार करके पुष्पवर्षण करने लगे और अवधपुरीमें आनन्द ही आनन्द छा गया। मंगलाभिषेक हो जाने पर श्रीरामचन्द्रजीने प्रथम तो अपनी प्रजाको उसका कर्त्तव्य बताया इसके अनन्तर महर्षियोंसे ब्रह्मविचार करनेकी प्रार्थना की, तब वे अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैतका क्रमशः निरूपण करने लगे। किसीने कहा जीव और ब्रह्म एक ही है, यह जगत् मिथ्या है।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"

जगत्‌की उत्पत्ति मायासे हुई है अतएव वह नाशवान् एवं मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है तथा जीव ब्रह्म ही है, तद्‌व्यतिरिक्त और कुछ नहीं है क्योंकि—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः; वायोरग्निरग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते"

अर्थात्—परब्रह्मसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति होती है एवं इन्हीं पंचतत्वोंसे विग्रहका निर्माण होता है और विग्रहमें जो ब्रह्मका आभास है उसीका नाम जीव अभिहित हुआ है अतएव वास्तवमें जीवब्रह्म एक ही है।

किसीने कहा-जीव और ब्रह्म एक नहीं है, वे दोनों अलग-अलग हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेति कथ्यते॥

संसारमें दो पुरुष हैं—एक क्षर और दूसरा अक्षर सब प्राणी क्षर और कूटस्थ अक्षर कहलाता है उत्तम पुरुष इन दोनों हीसे अलग है और उसीको परमात्मा कहते हैं। इस नियमसे लौकिक प्राणी एवं देवगण ये सभी जीव कोटिमें परिगणित होते हैं। परमात्मा साक्षी स्वरूपसे इनके शुभाशुभ कर्मोंका द्रष्टा है।

किसी-किसी ने अपना यह सिद्धान्त प्रगट किया कि—

"मायां तु प्रकृतिं विद्धि मायिनन्तु महेश्वरम्"

इस वाक्यसे बोध होता है कि प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं और महेश्वरकी प्रेरणासे माया इस जगतकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार किया करती है।

किसीने "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका निरूपण इस प्रकार किया 'तत्' जिसका कभी विनाश नहीं होता उस पदका वाचक त्वम् (तू) अर्थात् जीवही है। किसीने कहा जब 'तत्' और 'त्वम्' दो पद पृथक् २ हैं तब जीव और ब्रह्म भी भिन्न भिन्नही है। इसी प्रकार "सोऽहमस्मि"का किसीने तो यह अर्थ किया कि--'वह परब्रह्म मैं हूँ' परन्तु किसीने इसके अर्थमें भी यह परिवर्तन किया कि 'वह' और 'मैं' ये दोनों एक कदापि नहीं हो सकते। अतः "अहंब्रह्मास्मि" कहना जिस दशामें हो सकता है उस अवस्थामें बोलनेवाला रहता ही नहीं।

किसी ऋषिने जीवको ब्रह्ममें लीन हो जाना स्वीकार तो किया परन्तु भेद यह बताया कि दो स्थानके भिन्न भिन्न जल जिस प्रकार एकमें मिल जाते हैं और फिर किसीभी उपायसे वे पृथक्-पृथक् किये नहीं जा सकते। जीव और ब्रह्म इस प्रकार नहीं मिल जाते किन्तु वे इस प्रकार मिलते हैं जैसे जलमें मिश्री अथवा लवण घुल जाते हैं और रसायनशास्त्री अपनी प्रक्रियासे उन्हें फिर भी जलमेंसे अलग कर सकता है।

महर्षियोंके इस वाग्विलाससे हमारे मनमें भी विलक्षण कौतूहलका प्रादुर्भाव हो गया, हमने उनकी सेवामें नम्र निवेदन किया, जगद्गुरुओ ! हमने जो शिक्षा आपसे पाई है, जो संथा आप लोगोंसेही पढ़ी उसे अज्ञानवशात् कहीं अन्यथा तो याद नहीं कर लिया है, अथवा कुसंगमें पड़कर निपट ही विस्मृत तो नहीं कर दिया है ? अतः परीक्षाके देनेके विचारसे हम भी अपने मानसिक भाव प्रकाशमें लाना चाहते हैं—

वास्तवमें 'ब्रह्म' क्या वस्तु है, इसका रहस्य सहसा किसीकी समझमें नहीं आ सकता, क्योंकि वह मन और वाणीका विषय नहीं है ।

"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

ब्रह्म चिन्तनके लिये मन प्रयास करता है, अपनी तीव्र गतिसे ब्रह्म प्राप्तिके लिये दौड़कर जाता है परन्तु वहाँतक नहीं पहुँचता किन्तु थककर मध्य मार्ग में से ही लौट पड़ता है । वाणी उसका कीर्त्तन करनेमें प्रवृत्त होती है, परन्तु उसके प्रभावका पार नहीं पाती, निदान वह भी थककर शांत हो जाती है इसीसे एक लोकोक्ति है कि—

"समझा सो खामोश हुआ"

इसका आशय यही है कि जिसको ब्रह्मविषयक कुछ भी बोध हो जाता है वह उस विषयमें इतना निमग्न होनेका

प्रयत्न करता है जिससे फिर वह किसीसे बोलना अच्छा नहीं समझता । इसके इस प्रकार मौन रहनेका कारण भी है ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।

परब्रह्मको अन्तरात्मामें अवलोकन कर लेनेपर हृदयकी मोहजनित ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, अज्ञानजनित जितने सन्देह हैं वे सब छिन्न-भिन्न हो जाते, हैं, जितने कर्म हैं वे सब क्षीण हो जाते हैं । सुतराम् जब मोह, सन्देह और कर्म-बंधनकी निवृत्ति हो जाती है तब उसके चित्तमें शांति आ जाती है ।

इन बातोंका विचार करनेसे यही सिद्धान्त निश्चित होता है कि मतमतान्तर संबन्धी जितने विवाद या विरोध हैं वे सब तभीतक हैं जबतक उसका यथार्थ बोध नहीं होता है।

अतः सरल मार्ग यही है कि चाहे सखा भावसे और चाहे स्वामीसेवकसंबंध मानकर भगवदुपासना करे । क्योंकि वास्तवमें तीन मुख्य यज्ञ हैंः—प्रथम कर्मयज्ञ अथवा कर्मकांड है तदनुसार नित्य नैमित्तिक कर्म करनेकी विधि है; परन्तु कर्मके विषयमें यही आज्ञा है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥

निष्काम कर्म करना चाहिये और निष्कामकर्म भी भग-वदर्पण कर दे। कुछ लोग कर्मोंके परित्याग करदेनेका नाम ही

योग साधन बतलाते हैं परन्तु कर्मोंका त्याग वास्तवमें हो नहीं सकता, क्योंकि-

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा कर्मोंका आचरण कराती ही रहती है। द्वितीय यज्ञ, उपासन है, भक्तिसंपादनपूर्वक भगवानकी परिचर्या करनेको उपासना कहते हैं। सत्य भावसे उपासना करनेवालेकी सत्ता वास्तवमें ईश्वरतकके ऊपर विशेषरूपसे हो जाती है ईश्वरका अवतार लेना तक उपासनाहीके अधीन रहता है।

तृतीय यज्ञ, ज्ञानकांड है। जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब सब स्वर्गापवर्गतकके सुख हस्तामलकवत् सुलभ हो जाते हैं।

भगवत् प्राप्तिके ये तीनोंही क्रमिक सोपान हैं अतः क्रमशः तीनोंके ऊपर चढ़ते-चढ़ते मनुष्य परब्रह्मतक पहुँच सकता है। इससे क्रम प्राप्त तीनोंही यज्ञोंकी वेदीके ऊपर मनुष्यको आरूढ़ होकर विधिबद्ध साधना करनी चाहिये। भगवत् प्राप्ति या मोक्षप्राप्तिके ये ही उपाय हैं।

हमारा यह प्रवचन महर्षियोंकी मनस्तुष्टिका साधन हुआ। महर्षियोंका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करने एवं श्रीरामचन्द्रजीकी कृपादृष्टिसे प्रादुर्भूत स्नेह पीयूषसे अंग प्रत्यंग सिंचित हो जानेसे हम अपार आनन्दमें ऐसे गद्गद हो गये कि वाणी अवरुद्ध हो गई तबसे जहाँ देखते हैं जिसे देखते हैं वहां ही और

उसीमें श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपम झांकी दृष्टिगत होती है और मनमें यही भाव उत्पन्न रहते हैं कि-

सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि युगपानी

जगदीश्वर ऐसी कृपा करे जिससे इस आत्मरामायण भाषाके श्रोता-वक्ता तन्मय एवं जीवन्मुक्त होकर अणु परमाणुतकमें परब्रह्मकी सत्ताका अवलोकन करें जिसमें विश्व-कल्याण निहित है। मुरादाबादनिवासि-श्रीव्रजरत्नभट्टाचार्यसंगृहीत उत्तरकाण्ड एवं आत्मरामायण भाषा समाप्त।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
११/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बँक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९७७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जुना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS